स्वामी दयानन्द सरस्वती :
सम-सामयिक पत्रों में

(१८६६ से १८८३ पर्यन्त स्वामी दयानन्द के जीवन, कार्य एवं विचारों की सम-सामयिक पत्रों में प्रकाशित चर्चा का विहगावलोकन)

डॉ. भवानीलाल भारतीय

दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर

- प्रकाशक :

दयानन्द अध्ययन संस्थान
8/423, नन्दनवन, जोधपुर - 342 008
दूरभाष : 0291-2755883

- पुस्तक प्राप्ति स्थल :

डॉ. भवानीलाल भारतीय
8/423, नन्दनवन, जोधपुर-342 008
☎ 0291-2755883

- प्रथम संस्करण : 2060 वि. 2003 ई.

- मूल्य : 100 रुपये

- मुद्रक :

जांगिड़ कम्प्यूटर्स
14/934, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर
☎ 0291-2440581

SWAMI DAYANAND SARASWATI : SAMSAMAYIK PATRON MEIN
By Dr. Bhawani Lal Bhartiya
Edition : 2003
Price Rs. 100/-

समर्पण

स्वामी दयानन्द एवं आर्यसमाज विषयक
शोध-कार्य में रुचि लेने वाले
वर्तमान पीढ़ी के सहधर्मी गवेषकों
(प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, प्रा. कुशलदेव शास्त्री,
प्रा. दयालजी भाई आर्य, डा. ज्वलन्तकुमार शास्त्री
तथा प्रा. विपिनचन्द्र त्रिवेदी आदि)
को सप्रेम समर्पित

विषय-क्रम

भूमिका		vii
अध्याय 1	भारत में समाचार-पत्रों का उद्‌भव और विकास	1
अध्याय 2	नवजागरण तथा पत्र-पत्रिकाएँ	3
अध्याय 3	स्वामी दयानन्द और समकालीन पत्रकारिता	5
अध्याय 4	स्वामी दयानन्द के समकालीन आर्यपत्र	9
अध्याय 5	दयानन्द सरस्वती : गंगा के तटवर्ती प्रदेश में	35
अध्याय 6	काशी शास्त्रार्थ और सम-सामयिक पत्र	39
अध्याय 7	स्वामी दयानन्द-भारत की तत्कालीन राजधानी (कलकत्ता) में	45
अध्याय 8	स्वामी दयानन्द-बम्बई प्रदेश में	53
अध्याय 9	स्वामी दयानन्द-दिल्ली तथा पंजाब में	81
अध्याय 10	स्वामी दयानन्द-पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) में	92
अध्याय 11	स्वामी दयानन्द-राजस्थान में	113
अध्याय 12	प्रकीर्ण (फुटकर) प्रसंग	121
परिशिष्ट 1	श्रद्धांजलि प्रकरण (पत्र-पत्रिकाओं में छपी शोक संवेदना)	143
परिशिष्ट 2	सहायक एवं सन्दर्भ ग्रन्थ	146
परिशिष्ट 3	इस ग्रन्थ में उल्लिखित तथा विवेचित पत्रों की सूची	147

भूमिका

संसार में नया युग लाने वाले, मानव जीवन के उत्थान हेतु स्वयं को समर्पित करने वाले, राष्ट्र को नई दिशा देने वाले अथवा अपने देशवासियों के कर्म और चिन्तन में नवीन क्रान्ति लाने वाले महापुरुषों के जीवन, चरित्र, व्यक्तित्व एवं कार्यों की जितनी समीक्षा या मूल्यांकन किया जाए, उतना ही कम है। कवि, साहित्यकार, धर्माचार्य, समाजसुधारक, राष्ट्रभक्त-ये सभी जन-सामान्य की श्रद्धा और भक्ति के पात्र रहे हैं। अशेष जनों ने इन महनीय व्यक्तियों से प्रेरणा ली है। साथ ही ऐसे महापुरुषों के जीवन और चरित्र की आलोचना में पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। सुना है कि शेक्सपियर पर जितने ग्रन्थ लिखे गए हैं, उन्हें पचासों आलमारियों में रखने पर भी वे समाप्त नहीं होते। हमारे देश को ही लें-गांधीजी पर जितना साहित्य लिखा गया है, क्या वह गणना में आ सकता हे? तुलसीदास जैसे लोकसंग्रह को महत्त्व देने वाले कवि और विवेकानन्द जैसे दूरदर्शी संन्यासी पर जितना कुछ लिखा गया है, क्या उसका समुचित आकलन हुआ है?

देखा यह गया है कि किसी विशिष्ट धर्म, विचारधारा या वर्ग को नई दिशा देने वाले महापुरुषों के जीवन और व्यक्तित्व का विवेचन करने के लिए विभिन्न मापदण्ड और दृष्टिबिन्दु प्रयुक्त किये जाते हैं। भारतीय नवजागरण में दयानन्द सरस्वती का एक विशिष्ट स्थान रहा है। उन्होंने अपनी मौलिक सूझ, परम्परा और प्रगति के प्रति समन्वयात्मक दृष्टि तथा देशवासियों के सर्वांगीण उत्थान के लक्ष्य के द्वारा जो महान् कार्य किया, वह अप्रतिम था, अद्वितीय था। अनेक स्वदेशी-विदेशी लेखकों ने दयानन्द के जीवन और वैचारिक धरातल को अपने लेखन और आलोचना का विषय बनाया है। मैंने स्वयं अपने जीवन के बहुलांश को इसी महापुरुष के सर्वांगीण अध्ययन में

समर्पित तो किया ही, उनके जीवन और व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए पर्याप्त साहित्य भी लिखा जिसकी तालिका इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में देखी जा सकती है। विगत वर्षों में यह विचार मेरे मन में रह-रह कर आता रहा कि अपने लेखन की अगली योजना में मैं निम्न विषयों को हाथ में लूं-१. स्वामी दयानन्द के द्वारा लिखे गये तथा उन्हें भेजे गए पत्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन २. सम-सामयिक पत्रों में दयानन्द के विषय में जो कुछ लिखा गया, अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के प्रेस ने उनके विचारों और कार्यों की जैसी मीमांसा की, उसको प्रस्तुत करूं तथा ३. स्वामी दयानन्द के जीवन में उल्लिखित, उनके सम्पर्क में आये व्यक्तियों का एक परिचयात्मक कोश तैयार करूं। दयानन्द के पत्र-व्यवहार के आलोचनात्मक अध्ययन को लेकर लिखा गया मेरा ग्रन्थ गत वर्ष प्रकाशित हो चुका है और समाचार-पत्रों में दयानन्द की छवि को उकेरने के जो प्रयत्न उन्नीसवीं शताब्दी में हुए, उनकी विवेचना प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ पाठकों के हाथों में जा रहा है। शेष रहा दयानन्द के जीवनचरित में उल्लिखित व्यक्तियों का परिचयात्मक कोश, यह भविष्य में करणीय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

सम्भवतः अनेक पाठक सोचते और समझते होंगे कि क्या किसी महापुरुष के एक साधारण और बहुप्रचलित जीवनचरित को पढ़ लेना ही काफी नहीं है? क्या इतने मात्र से ही उस दिव्यात्मा की झांकी हमारे मानस पटल पर अंकित नहीं हो पाती? पुनः अन्य दृष्टि-बिन्दुओं से उस नायक को जांचना या परखना तो कुछ विशेष जानने के उत्सुक पाठकों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए? मैं मानता हूँ कि इस युक्ति में दम है। साधारण पाठक को सन्तोष तो एक मध्यम आकार की जीवनी को पढ़ने से भी हो सकता है किन्तु विशेषज्ञता प्राप्त करने के इच्छुक तथा अधिक गहराई में जाकर अपने आराध्य महापुरुष की जीवनधारा एवं चिन्तन-प्रणाली का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए यह ज़रूरी है कि उनके बारे में अधिकाधिक जानकारी जुटाई जाए तथा उपलब्ध सभी स्रोत सामग्री को ऐसे जिज्ञासु पाठक के समक्ष रख दिया जाए। इसी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ लिखा गया है। यहाँ मेरी यह चेष्टा रही है कि सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में दयानन्द सरस्वती के बारे में जो कुछ

समाचार, सूचना, टिप्पणी, आलोचना या विवेचना प्रकाशित हुई, उसे एक स्थान पर लेखबद्ध कर दूं।

निश्चय ही इस अध्ययन के लिए मुझे मुख्यतः दयानन्द के दो जीवनचरितों पर निर्भर रहना पड़ा है-(१) पं. लेखराम द्वारा संग्रहीत सामग्री को आधार बनाकर पं. आत्माराम अमृतसरी द्वारा सम्पादित जीवनचरित (२) पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित प्रथम बंगला जीवनचरित तथा कालान्तर में उनके द्वारा संग्रहीत सामग्री को आधार बनाकर पं. घासीराम द्वारा लिखित बृहत् जीवनचरित। (इसके कुछ अध्याय स्वयं मुखोपाध्यायजी ने लिखे थे) यदि इन दो जीवनीकारों ने सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में आए दयानन्द विषयक सन्दर्भों का अन्वेषण और संकलन नहीं किया होता तो यह निश्चित है कि इस महापुरुष के जीवन एवं व्यक्तित्व की आलोचना और मीमांसा अपूर्ण रहती। साथ ही यदि उन पत्रों को सुरक्षित कर लिया जाता तो वह दयानन्द विषयक साहित्य-संग्रहालय की एक अमूल्य एवं अनुपम निधि होती। तथापि यह भी क्या कम है कि आज इन दो लेखकों की सूक्ष्म दृष्टि तथा श्रम के परिणामस्वरूप हम स्वामी दयानन्द के काल के पत्रकारों, सम्पादकों, संवाददाताओं तथा कालम-लेखकों के कारण नवजागरण के पुरोधा, उस महापुरुष के बहुआयामी जीवन के कुछ अज्ञात पहलुओं को जान पाए हैं।

दयानन्द का देशभ्रमण उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में महाराष्ट्र तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में गुजरात पर्यन्त हुआ था। अतः यही स्वाभाविक था कि मुख्यतः इसी भू-भाग के पत्रों में उनके बारे में चर्चा और आलोचना छपती। तथापि हम देखते हैं कि तत्कालीन मद्रास प्रान्त के पत्रों में यदा-कदा दयानन्द की चर्चा हुई थी। वैचारिक दृष्टि से देखें तो जिन पत्रों में दयानन्द विषयक सन्दर्भ छपे हैं वे हैं—सनातनी या पौराणिक, आर्यसमाजी, ईसाइयत तथा ब्रह्मसमाज के विचारों के संवाहक पत्र। अनेक पत्र ऐसे भी थे जिनका किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक विचारधारा से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे विशुद्ध समाचार-पत्र थे। जहां तक भाषाओं का सम्बन्ध था, दयानन्द विषयक वृत्तान्त और टिप्पणियां हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, मराठी, गुजराती

एवं बंगाली भाषा के पत्रों में छपी हैं। उस समय पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश में उर्दू पत्रों का बाहुल्य था। हिन्दी, अंग्रेजी तथा बंगला-इन तीनों भाषाओं के पत्र प्रधानतया कलकत्ता से छपते थे। हिन्दी भाषा तो मध्यदेश की प्रमुख भाषा थी। वर्तमान उत्तरप्रदेश, राजस्थान और बिहार के अधिकांश पत्र हिन्दी में ही निकलते थे। महाराष्ट्र तथा गुजरात भ्रमण के समय स्वामी दयानन्द पर इन प्रान्तों की मराठी तथा गुजराती भाषाओं में भी समाचार तथा लेखादि छपे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने सम-सामयिक पत्रों में व्यक्त दयानन्द के जीवन एवं व्यक्तित्व को उभारने की चेष्टा की है। हम अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हुए, उसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे। मेरे अन्य ग्रन्थों की भांति इस ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण का श्रेय मेरे अनन्य स्नेही श्री भंवरलाल सुथार, 'जांगिड़ कम्प्यूटर्स' को है, एतदर्थ उनका आभार प्रकट करना आवश्यक है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में सर्वश्री मित्रसेनजी सिंधु, स्वामी सदानन्द सरस्वती (दयानन्द मठ, दीनानगर), श्री लाला लक्ष्मणदासजी (बल्लभगढ़), श्री वाचोनिधि आर्य, मंत्री आर्यसमाज गांधी धाम, श्री शिवकुमार चौधरी, इन्दौर तथा मेरे परम आत्मीय श्री चांदरतन दम्माणी जी का आर्थिक सहयोग रहा है। साहित्यिक अनुष्ठान के लिए अपना योगदान करने वाले ये महानुभाव सचमुच हम सबके सम्मान के पात्र हैं।

'रत्नाकर'
नन्दनवन, जोधपुर — **डा. भवानीलाल भारतीय**
मार्गशीर्ष शुक्ला ६ सं. २०५६ वि.

अध्याय १

भारत में पत्रकारिता का उद्भव और विकास

भारत में पत्र-पत्रिकाओं का आरम्भ और विकास यूरोपीय जातियों के इस देश में आगमन के पश्चात् हुआ। अंग्रेजी शासन की नींव इस देश में सुस्थिर हो जाने के पश्चात् यहां समाचार-पत्रों के छपने की शुरुआत हुई। एक अंग्रेज जेम्स आगस्ट हिकी ने २९ फरवरी १७८० को कलकत्ता से **बंगाल गज़ट** या **कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर** नामक पत्र आरम्भ किया। इसमें मुख्यतः विज्ञापन तथा राजनीतिक टिप्पणियां छपती थीं। इसके बाद तो अंग्रेजी में बहुत-से पत्र निकलने लगे। कलकत्ता के पश्चात् बम्बई तथा मद्रास वे नगर थे, जहाँ से अधिसंख्य पत्र छपते थे।

भारतीय भाषाओं में निकलने वाला सर्वप्रथम पत्र बंगला का मासिक **'दिग्दर्शन'** नामक था, जिसे सीरामपुर (श्रीरामपुर) (बंगाल) के बैपटिस्ट ईसाई मिश्नरी निकालते थे। इसका प्रकाशन १८१७ में हुआ। शीघ्र ही भारतवासी पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व समझने लगे। विशेषतः बंगाल के शिक्षित समाज ने पत्रों के आरम्भ और विकास में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। १८२० में ताराचंद दत्त तथा भवानीचरण बनर्जी के संयुक्त सम्पादकत्व में साप्ताहिक पत्रिका **'संवाद कौमुदी'** निकलने लगी। राजा राममोहन राय इन सम्पादकों के मित्र थे, अतः लोग इस पत्र को उनका ही पत्र समझते थे। जब ईसाई प्रचारकों ने अपने एक पत्र **'समाचार दर्पण'** के द्वारा हिन्दू धर्म पर चहुंमुखी आक्रमण करने आरम्भ किये तो राममोहन राय को इनका प्रतिकार करने के लिए एक पत्र निकालने की आवश्यकता अनुभव हुई। फलतः उन्होंने अंग्रेजी में **ब्रह्मैनिकल मैगज़ीन** (Brahmanical Magazine) नामक अंग्रेजी पत्र निकाला और मिश्नरियों द्वारा किये जाने वाले धार्मिक आक्षेपों का उत्तर देने लगे। यह पत्र अंग्रेजी तथा बंगला का द्विभाषी-पत्र था। राममोहन राय बहुभाषाविज्ञ थे। बंगला तो उनकी मातृभाषा ही थी। इसके अतिरिक्त वे

अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी, यहाँ तक कि लैटिन, ग्रीक एवं हिब्रू जैसी प्राचीन यूरोपीय भाषाएं भी जानते थे। उनके काल तक फारसी को भारत की राजभाषा का दर्ज़ा मिला हुआ था। मुसलमान और मराठा, यहां तक कि सिखों के द्वारा शासित राज्यों में भी फारसी का बोलबाला था। १८२८ में ब्रह्मसमाज की स्थापना के पश्चात् राममोहन राय ने **'मीरातुल अख़बार'** नाम से एक फारसी का पत्र भी निकाला।

राजा राममोहन राय भारत के बहुसंख्यक लोगों की भाषा हिन्दी को जानते थे। ६ मई १८२६ को उन्होंने एक त्रिभाषी पत्र **'बंगदूत'** निकाला। इसमें बंगला और हिन्दी के अलावा फारसी के लेख भी छपते थे। इस विवरण से ज्ञात होता है कि राजा राममोहनराय ने अपने प्रगतिशील धार्मिक एवं सामाजिक विचारों के प्रचार में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका को निर्विवाद माना था। हिन्दी भाषा का प्रथम पत्र **'उदन्त मार्तण्ड'** ३० मई १८२६ को पं. युगलकिशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता से प्रारम्भ हुआ। लगभग डेढ़ वर्ष तक लगातार छपते रहने के पश्चात् **'उदन्त-मार्तण्ड'** (समाचारों का सूर्य) अस्ताचल की ओर चला गया। इसका अन्तिम अंक ११ दिसम्बर १८२७ को छपा था। **'उदन्त मार्तण्ड'** चाहे दीर्घजीवी नहीं हो सका किन्तु राजधानी कलकत्ता से उसके बाद हिन्दी के अनेक पत्र छपने लगे। बंगाल के अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान में उत्तरप्रदेश) मालवा और बम्बई प्रान्त से भी हिन्दी पत्र छपने लगे थे। यहां हिन्दी पत्रकारिता का विस्तृत इतिहास देना हमारे विषय की परिसीमा में नहीं आता। तथापि यह जानना आवश्यक है कि हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास लगभग पौने दो सौ वर्ष पुराना है।

अध्याय २

नवजागरण तथा पत्र-पत्रिकाएँ

उन्नीसवीं शताब्दी भारत में नवजागरण का सन्देश लेकर आई। कहना नहीं होगा कि इस शती में धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक नवोदय के प्रवर्त्तक महापुरुषों एवं उनके द्वारा प्रवर्त्तित आन्दोलनों ने पत्रों के माध्यम से ही सुधार एवं संस्कार के अपने सन्देश को जनसाधारण तक पहुंचाया था। विगत अध्याय में हम भारतीय नवजागरण के पुरोधा राजा राममोहन राय द्वारा चलाये गये बंगला, हिन्दी, फारसी तथा अंग्रेजी पत्रों का उल्लेख कर चुके हैं। इन्हीं पत्रों में लिख कर राममोहन राय ने ईसाई प्रचारकों से धार्मिक मुबाहिसे किये, सती प्रथा के अशास्त्रीय होने की उद्घोषणा की तथा **'एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म'** का सन्देश दिया। राममोहन राय के बाद महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्मसमाज का नेतृत्व संभाला। साधुमना एवं ईश्वर-परायण ठाकुर महाशय ने ब्राह्म सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए १८४३ में बंगला में **'तत्त्वबोधिनी पत्रिका'** प्रकाशित की और इसका सम्पादन भार अक्षयकुमार दत्त को सौंपा। **'तत्त्वबोधिनी पत्रिका'** ने ब्रह्मसमाज के धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों को बंगला भाषियों तक पहुंचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज के तेजस्वी नेता तो थे ही, बंगला तथा अंग्रेजी के असाधारण वक्ता एवं सुलेखक भी थे। उन्होंने **'इण्डियन मिरर'** का प्रकाशन किया और उसके द्वारा उन्होंने अपने प्रगतिशील सामाजिक विचारों को अंग्रेजी पढ़े-लिखे प्रबुद्ध लोगों तक पहुंचाया। पंजाब में ब्रह्मसमाज के प्रमुख प्रचारक नवीनचन्द्र राय थे। उन्होंने लाहौर से **'ज्ञान प्रदायिनी-पत्रिका'** का प्रकाशन किया जिसके माध्यम से वे उत्तर भारत में ब्राह्म सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। १८६७ में महाराष्ट्र के कतिपय सुधारकों ने प्रार्थना-समाज की स्थापना की, जिसकी प्रेरणा उन्हें केशवचन्द्र सेन तथा प्रतापचन्द्र मजूमदार की बम्बई यात्रा से मिली। प्रार्थना-समाज के धार्मिक

सिद्धान्त ब्रह्मसमाज के प्रायः अनुरूप ही थे। इस संस्था ने अपने विचारों के प्रचार के लिए **'सुबोध-पत्रिका'** नामक मराठी पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया।

थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई थी किन्तु भारतीय धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म से प्रेरणा लेने वाली इस संस्था ने भारत को पुण्यभूमि का सा सम्मान दिया। प्रारम्भ में इस सोसाइटी के संस्थापकों ने आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द की वैदिक शिक्षाओं को स्वीकार करने में असाधारण उत्साह दिखाया, परन्तु कालान्तर में कतिपय कारणों से इन दोनों के बीच विसंवाद की सी स्थिति उत्पन्न हो गई और थियोसोफिकल सोसाइटी ने अपना रास्ता अलग कर लिया। थियोसोफी के आचार्यों ने अपने मन्तव्यों के प्रचार के लिए बम्बई से **'दी थियोसोफिस्ट'** नामक पत्र निकाला तथा स्वामी दयानन्द की आत्मकथा का धारावाही प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र में हिन्दू धर्म, दर्शन तथा संस्कृति विषयक अनेक लेख निरन्तर छपते थे।

उपर्युक्त विवरण यह सिद्ध करता है कि किसी देश या समाज में वैचारिक क्रान्ति लाने तथा परिवर्तन की दिशा का निर्देश करने में पत्र-पत्रिकाओं का कितना महत्त्व होता है। निश्चय ही ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी ने भारत में जो नवजागृति फैलाई, उसमें पत्रों का बड़ा हाथ था। आर्यसमाज के द्वारा प्रकाशित पत्रों का विवरण आगे के अध्यायों में मिलेगा।

अध्याय ३

स्वामी दयानन्द और समकालीन पत्रकारिता

यह हम देख चुके हैं कि हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ था। इस शती में भारत के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण के अनेक आन्दोलन प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने देशवासियों के जीवन, कार्य एवं चिन्तन को नवीन दिशा दी। हम यह भी देख चुके हैं कि हिन्दी के प्रथम समाचारपत्र **'उदन्त मार्तण्ड'** का उदय १८२६ में हुआ था। इससे दो वर्ष पूर्व १८२४ में सौराष्ट्र के एक साधारण से गांव टंकारा में दयानन्द सरस्वती का जन्म हुआ। मूलशंकर (दयानन्द सरस्वती) ने अध्ययन तथा साधना में अनेक वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् १८६३ में अपने धर्मोपदेशक जीवन का आरम्भ किया। इससे कुछ समय पूर्व ही उन्होंने मथुरा स्थित दण्डी विरजानन्द की संस्कृत पाठशाला में अपना शास्त्रीय अध्ययन पूरा किया था। कई वर्षों तक वे गंगा के तटवर्ती प्रदेश में एकाकी विचरते हुए वैदिक धर्म के मौलिक तत्त्वों का प्रचार करते रहे। धीरे-धीरे वे जनजीवन से अधिक जुड़े और उनकी सार्वजनिक प्रवृत्तियों का विस्तार होने लगा। भारत के किसी समाचार-पत्र में स्वामी दयानन्द के नाम का प्रथम बार उल्लेख १८६६ में हुआ माना जाएगा जब कानपुर से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र **'शोलएतूर'** ने पं. हलधर ओझा से हुए उनके एक शास्त्रार्थ का एकपक्षी विवरण प्रकाशित किया। इसी वर्ष नवम्बर में उन्होंने काशी के पण्डितों से मूर्तिपूजा के औचित्य को सिद्ध करने के लिए प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किया जिसकी चर्चा तत्कालीन हिन्दी, उर्दू, बंगला तथा अंग्रेजी के पत्रों में विस्तारपूर्वक हुई थी। आगे के अध्याय में हम इसकी विस्तृत चर्चा करेंगे। इस शास्त्रार्थ ने स्वामी दयानन्द को देशव्यापी ख्याति दिलाई।

ज्यों-ज्यों स्वामी दयानन्द का धर्मप्रचार का कार्यक्रम जोर पकड़ता गया, समाचार-पत्रों ने उनका अधिकाधिक नोटिस लेना आरम्भ किया। अपने

कलकत्ता प्रवासकाल (१८७२-७३) में वे देश के उन महापुरुषों से मिले जो उस समय स्वदेश एवं स्वधर्म के उत्थान की विभिन्न योजनाओं को जनता के समक्ष रख रहे थे। दयानन्द के एतद्विषयक विचार भी पर्याप्त प्रगतिशील तथा जनोपयोगी थे। अतः बंगाल के पत्रों में उनके कार्यों और विचारों की पर्याप्त चर्चा हुई। ध्यातव्य है कि कलकत्ता ही उस समय की स्वदेशी पत्रकारिता का प्रमुख केन्द्र था और बंगाल का पठित एवं प्रबुद्ध समाज स्वदेशोन्नति के लिए सर्वाधिक सक्रिय था। बंगाल प्रवास को समाप्त कर जब स्वामीजी महाराष्ट्र प्रान्त (उस समय का बम्बई प्रान्त) की प्रचार यात्रा के लिए बम्बई आए तो उनकी गतिविधियों को वहां के गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी पत्रों ने प्रमुखता से छापा। कलकत्ता के बाद बम्बई ही वह नगर था जो व्यापार-व्यवसाय, शिक्षा तथा पश्चिम के सम्पर्क की दृष्टि से भारत में दूसरे स्थान पर था। इसके बाद १८७७ में स्वामीजी ने पंजाब की यात्रा की। यहां की परिस्थितियां उनके कार्य के अधिक अनुकूल थीं। फलतः पंजाब के हिन्दू समाज ने उनकी शिक्षाओं को खुले दिल से अंगीकार किया और रावलपिण्डी, मुलतान, गुरदासपुर, फीरोजपुर, लाहौर, अमृतसर तथा जालन्धर आदि नगरों में वे अपने आन्दोलन को फैलाने में सफल हो सके। इन दिनों पंजाब में उर्दू पत्रों का बोलबाला था जिनके मालिक हिन्दू तथा मुसलमान-दोनों समुदायों के लोग थे। ईसाई धर्मप्रचारक भी यहां से उर्दू पत्र निकालते थे। इन सभी पत्रों में दयानन्द सरस्वती के धर्मप्रचार की चर्चा रहती थी। इसी प्रकार बिहार तथा पश्चिमोत्तर-प्रदेश के पत्रों ने भी दयानन्द के धर्मप्रचार कार्य को यथाशक्ति प्रचारित किया।

१८७५ में स्वामी दयानन्द ने जब बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की, उस समय तक वे प्रचार कार्य में पत्रों के महत्त्व को भलीभांति अनुभव कर चुके थे। अतः आर्यसमाज के प्रारम्भिक २८ नियमों का निर्धारण करते समय उन्होंने पुस्तक लेखन तथा पत्र प्रकाशन को इस संस्था का प्रमुख कर्त्तव्य बताया। आर्यसमाज के नियम संख्या पांच में अंकित किया गया था कि **प्रधान आर्यसमाज में वेदोक्तानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार के सदुपदेश की पुस्तक होगी और एक पत्र आर्यप्रकाश यथानुकूल आठ दिन में निकलेगा**। नियम संख्या १२ में इस पत्र की व्यवस्था के लिए आर्य सभासदों द्वारा उदारतापूर्वक धन दिये जाने तथा नियम संख्या २५ में

'आर्यप्रकाश' पत्र की रक्षा एवं उन्नति के लिए आर्य सभासदों को प्रेरित किया गया था।

कालान्तर में स्वामी दयानन्द अपने विचारों, मान्यताओं तथा सिद्धान्तों को पठित वर्ग तक पहुंचाने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का अधिकाधिक सहारा लेने लगे। उनके कार्यक्रमों से सम्बन्धित विज्ञप्तियाँ तथा सूचनाएँ विभिन्न पत्रों में स्थान पाने लगीं तथा पठित जनता को उनकी गतिविधियों का अधिक परिचय मिलने लगा। यदा-कदा वे किसी विवादास्पद विषय पर अपना मत प्रकट करने के लिए सम्पादक के नाम पत्र लिखते जिसे उक्त पत्र में स्थान मिलता। जब हिन्दी के प्रसिद्ध दैनिक **'भारत मित्र'** ने मिस्टर ए.ओ. ह्यूम द्वारा की गई स्वामीजी के वेदविषयक विचारों की आलोचना छापी तो उन्होंने इसका उत्तर इसी पत्र में **'सम्पादक के नाम पत्र'** लिखकर दिया। मुंशी इन्द्रमणि और उनके शिष्य जगन्नाथदास द्वारा किये गये व्यक्तिगत आक्षेपों का उत्तर उन्होंने अजमेर के **'देशहितैषी'** पत्र के द्वारा दिया। इसका खुलासा इस प्रकार है-

मुसलमानों ने जब मुंशी इन्द्रमणि की इस्लाम विषयक कुछ पुस्तकों को आपत्तिजनक समझते हुए उन पर अदालत में मुकद्दमा दायर किया तो स्वामीजी ने इस घटना को सम्पूर्ण हिन्दू समाज के लिए एक चुनौती के रूप में लिया तथा मुंशीजी पर लगाये गये आरोपों का जवाब देने के लिए उन्हें कानूनी सहायता उपलब्ध करवाई। इसके लिए लोगों से धन की अपील की गई तथा भविष्य में भी ऐसा कोई प्रसंग आने पर कानूनी लड़ाई लड़ने के लिए एक स्थायी निधि की स्थापना करने पर बल दिया। स्वामीजी की अपील पर लोगों ने उदारतापूर्वक प्रस्तावित सहायता कोष के लिए धन दिया किन्तु मुंशी इन्द्रमणि ने इस धन पर एकाधिकार जमाना चाहा। उनका तर्क था कि यह धन उन पर चलाये गये मुकद्दमे से निपटने के लिए जनता ने दिया है इसलिए इस पर उनका ही अधिकार है। जबकि स्वामीजी चाहते थे कि इस धन को स्थायी कोष का रूप दे दिया जाए ताकि भविष्य में भी ऐसे किसी काम में उसका उपयोग हो सके। कालान्तर में यह वाद-विवाद काफी उग्र हो गया और मुंशीजी ने स्वामीजी के प्रति कुछ असम्मानजनक बातें कहीं तथा पत्रों में भी छपवाईं। स्वामीजी ने **'एक उचित वक्ता'** के नाम से इस प्रकरण पर अपना

स्पष्टीकरण दिया जो **'देशहितैषी'** तथा अन्य पत्रों में छपा। आगे हमने इसकी विस्तृत चर्चा की है।

स्वामी दयानन्द ने जहाँ समकालीन पत्रों को अपने विचारों के प्रसार का माध्यम बनाया वहां उन्होंने देश की विभिन्न आर्यसमाजों को यथाशक्य अपने अपने पत्र निकालने की प्रेरणा भी दी। वैदिक यंत्रालय के प्रथम प्रबंधक मुन्शी बख्तावरसिंह ने १८७८ में **'आर्य दर्पण'** मासिक शाहजहांपुर से निकाला। यद्यपि यह उक्त मुन्शीजी का निजी पत्र था, किन्तु उसमें आद्यन्त आर्यसमाज के विचारों का ही प्रतिपादन रहता था। आर्यसमाज फर्रूखाबाद ने स्वामीजी की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से १८७६ में **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्र कई दशाब्दों तक निकलता रहा तथा उसमें स्वामी दयानन्द एवं आर्यसमाज विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुई। अजमेर आर्यसमाज ने १८८२ में मासिक **'देशहितैषी'** निकाला। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक तथा युग निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनेक धार्मिक मन्तव्यों को लेकर स्वामीजी से मतभेद था। किन्तु वे उनकी देशहितैषिता, स्वधर्म प्रेम, हिन्दी प्रेम, गोरक्षा आदि के विचारों से पूर्णतया सहमत थे। उन्होंने अपने पत्र **हरिश्चन्द्र चन्द्रिका** के सम्पादक मण्डल में स्वामी दयानन्द को स्थान दिया था। स्वामीजी के निधन के पश्चात् देश के विभिन्न पत्रों ने उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पित करते हुए शोक संवाद छापे तथा उनके द्वारा की गई स्वधर्म, स्वदेश, स्वभाषा तथा स्वसंस्कृति की सेवा का निरूपण करते हुए अग्रलेखों का प्रकाशन किया। अनेक पत्रों ने स्वामीजी के विचारों से मतभेद रखते हुए भी उनकी देशभक्ति तथा सुधार-भावना की सराहना की।

अध्याय ४

स्वामी दयानन्द के समकालीन आर्य पत्र

हम यह देख चुके हैं कि १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् अनेक आर्य पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हो गया था। इसमें स्वयं स्वामीजी की प्रेरणा भी कार्य कर रही थी। इन पत्रों में स्वामी दयानन्द विषयक अनेक संदर्भ, सूचनाएँ तथा लेख आदि प्रकाशित होते थे। प्रकाशन काल के अनुसार इनका संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. आर्यसमाज का प्रथम पत्र-आर्य दर्पण

आर्यसमाज की स्थापना के तीन वर्ष पश्चात् शाहजहांपुर निवासी मुन्शी बख्तावरसिंह ने जनवरी १८७८ से **'आर्य दर्पण'** मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया। यह उनका निजी पत्र था किन्तु इसमें अधिकांश सामग्री आर्यसमाज तथा स्वामी दयानन्द से सम्बन्धित रहती थी। इस द्विभाषी पत्र (हिन्दी तथा उर्दू) में दो समानान्तर कालमों में उर्दू तथा हिन्दी में लेख छपते थे। मुख पृष्ठ पर निम्न इबारत रहती थी-

"**आर्य दर्पण** मासिक जिसमें वेदादि सत्य शास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश विषय की वार्ता, श्रीमद्दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान और उनके नवीन मत वालों से शास्त्रार्थ, आर्यसमाजों के वृत्तान्त और ऐडिटोरियल नोट्स इत्यादि प्रकाशित होते हैं।"

आर्यदर्पण की १८८० वर्ष की फाइल को देखने से पता चलता है कि इस वर्ष के अंकों में स्वामीजी के धर्म प्रचार कार्यक्रम तथा भिन्न मतावलम्बियों से हुए उनके शास्त्रार्थों का विवरण प्रकाशित हुआ है। जनवरी १८८० के अंक में स्वामीजी के काशी आगमन तथा १६६६ में हुए मूर्तिपूजा विषयक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का विवरण छपा है। इस विवरण से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्र **'कविवचन सुधा'** में स्वामीजी के विचारों के विरोध में कई

लेख प्रकाशित हुए थे[1] जिनका उत्तर काशी से प्रकाशित होने वाले किसी **'आर्यमित्र'** नामक पत्र में छपा था। शास्त्रार्थ की समाप्ति पर काशी के पण्डितों ने इस वाद में स्वामीजी को पराजित घोषित किया तथा 'दयानन्द पराभूति' नामक एक पुस्तक काशी नरेश के यंत्रालय से मुद्रित करा कर प्रकाशित की। परन्तु शास्त्रार्थ का सत्य विवरण प्रथम बार **अथ शास्त्रार्थ और सद्धर्म विचार** शीर्षक पुस्तक में १८२६ वि. में प्रकाशित हुआ।[2] काशी शास्त्रार्थ का हिन्दी और उर्दू में अनुवाद **आर्य दर्पण** के इसी अंक में छपा। सम्भवतः शास्त्रार्थ के मूल संस्कृत विवरण (जो निश्चय ही स्वामी दयानन्द लिखित था) का हिन्दी तथा उर्दू अनुवाद मुन्शी बख्तावरसिंह ने किया होगा।

स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य का लेखन १८७७ से प्रारम्भ कर दिया था। पर्याप्त समय तक इस वेदभाष्य का मुद्रण मुम्बई के निर्णय सागर यंत्रालय से होता रहा किन्तु बाद में वैदिक शास्त्रों के प्रकाशन के लिए स्वामीजी ने अपना निज का वैदिक यंत्रालय काशी में स्थापित किया। मुन्शी बख्तावरसिंह इस प्रेस के प्रथम प्रवंधक नियुक्त किये गये। **आर्य दर्पण** के इस अंक के टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर स्वामीजी के वेदभाष्य का विज्ञापन **प्रज्ञापन** शीर्षक से छपा है। इसमें कहा गया था-"इस भाष्य में एक-एक मंत्र की सात-सात प्रकार की व्याख्याएं होती हैं। प्रत्येक मंत्र से पूर्व संस्कृत में भूमिका (मंत्र का विषय-निर्देश) दूसरी-भाषा में भूमिका, तीसरी-संस्कृत में प्रत्येक पद के प्रमाण सहित अलग-अलग अर्थ, चौथी-अन्वय, पांचवी, भावार्थ, छठी-पदार्थ और अन्वय को मिला कर भाषा में अर्थ और सातवीं-भाषा में भावार्थ। अर्थात् चार प्रकार की संस्कृत में और तीन प्रकार की भाषा में व्याख्या होती है।"

आर्यदर्पण के फरवरी १८८० के अंक में हुगली शास्त्रार्थ का विवरण छपा है। यह शास्त्रार्थ प्रतिमापूजन पर १९२६ वि. में बंगाल के भाटपाड़ा (भटपल्ली) नामक ग्राम में स्वामी दयानन्द तथा पं. ताराचरण तर्करत्न के बीच हुआ था।[3] इसी अंक में काशी शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति का सम्पादक के नाम पत्र **'प्रेरित पत्र'** स्तम्भ के अन्तर्गत छपा है। पत्र के लेखक का नाम नहीं दिया गया। इसमें जनवरी १८८० के **आर्य दर्पण** के अंक में छपे काशी शास्त्रार्थ के संदर्भ को देकर पं. सत्यव्रत सामश्रमी के पत्र **प्रत्नकम्र-नन्दिनी** (The Hindu Commentator) के दिसम्बर १८६६ के अंक में

छपे शास्त्रार्थ के विवरण का कुछ अंश अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया गया है। **प्रत्नकम्र नन्दिनी** के इस उद्धरण पर **आर्यदर्पण** के सम्पादक ने अपनी जो टिप्पणी 'एडिटोरियल नोट्स' शीर्षक से दी है उसका भावार्थ यह है कि यद्यपि स्वामी विशुद्धानन्द और पं. बालशास्त्री ने कई व्यक्तियों से एकान्त में कहा था कि "जो कुछ स्वामी दयानन्द कहते हैं, सब सत्य है, परन्तु क्या करें? यदि हम भी ऐसा ही कहने लगें तो लोग हमकों छोड़ दें। हमसें बैर रखने लगें। फिर हम लोगों की जीविका कैसे चले।" आदि।

आर्यदर्पण के मार्च १८८० के अंक में **'सत्यधर्म प्रचार'**[४] शीर्षक से चांदापुर के धर्म मेले में स्वामीजी के पादरियों तथा मौलवियों से हुए शास्त्रार्थ का विवरण छपा है। प्रतीत होता है कि यह विवरण भी सम्पादक (मुन्शी बख्तावरसिंह) ने ही तैयार किया होगा। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के १२ वें समुल्लास में उल्लिखित जैन मत विषयक टिप्पणियों से असहमति रखने वाले गुजरांवाला (पंजाब) के ठाकुरदास भाभड़ा (जैन) का स्वामीजी से पर्याप्त काल तक वाद-विवाद चला था। इस सम्बन्ध में आर्यसमाज गुजरांवाला के मंत्री ने स्वामीजी के निर्देश से जो पत्र ठाकुरदास को भेजा उसकी प्रतिलिपि इस अंक में छपी है। मुन्शी इन्द्रमणि की पुस्तकों पर मुसलमानों ने अपनी आपत्ति दर्ज़ कराते हुए उन पर जो अभियोग चलाया, उससे सम्बद्ध तीन पत्र भी इस अंक में छपे हैं।

मई १८८० के **आर्यदर्पण** में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की **'निवेदन'** शीर्षक पुस्तक के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति ने 'मिथ्या-भाषण-पक्षपात का कारण' शीर्षक एक लेख छपाया। स्मरणीय है कि राजा शिवप्रसाद ने स्वामी दयानन्द से 'ब्राह्मण ग्रन्थों का वेदत्व' को लेकर पर्याप्त विचार विमर्श किया था। इसी प्रसंग में स्वामीजी ने **'भ्रमोच्छेदन'**[५] नामक पुस्तक लिख कर राजा साहब की इस धारणा का खण्डन किया था कि ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा है। **कविवचन सुधा** (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पादित) तथा **भारतबंधु** नामक पत्रों में **'भ्रमोच्छेदन'** की आलोचना छपी थी। **आर्यदर्पण** के इस अंक में उक्त पूर्वाग्रह युक्त आलोचनाओं का उत्तर दिया गया है। इसी प्रकार दयानन्द रचित **संस्कृत वाक्य प्रबोध** के प्रथम संस्करण में मुद्रण जन्य कतिपय त्रुटियों की कटु आलोचना पं. अम्बिकादत्त व्यास तथा श्री रामकृष्ण वर्मा ने संयुक्त रूप

से 'अबोध-निवाण' पुस्तक लिखकर की तो **आर्य दर्पण** के इसी अंक में **अबोध-निवारण** का प्रत्युत्तर **'एक पण्डित'** के नाम से छपा। अनुमान है कि यह उत्तर स्वामीजी ने ही लिखा था। आर्यसमाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध विच्छेद की सूचना भी इसी पत्र में छपी। **आर्यदर्पण** के जून १८८० के अंक में स्वामी दयानन्द तथा अजमेर के पादरी ग्रे के बीच हुए शास्त्रार्थ का विवरण छपा है। यह विवरण **आर्यदर्पण** में प्रकाशन के लिए किसने भेजा, यह विदित नहीं होता, किन्तु इस शास्त्रार्थ के विवरण में जो पाद-टिप्पणियां दी गई हैं, उनके साथ 'स.द.' छपा है। सम्भवतः यह विवरण अजमेर के मुन्शी समर्थदान[६] ने भेजा होगा जो कालान्तर में स्वामीजी के विश्वसनीय कर्मचारी रहे थे। मुन्शी बख्तावरसिंह को वैदिक यंत्रालय की स्थापना के साथ ही प्रेस का मैनेजर नियुक्त किया गया था किन्तु बाद में उनकी अर्थ विषयक अशुचिता तथा अन्य अनियमितताओं को लक्ष्य में रख कर स्वामीजी ने उन्हें इस पद से हटा दिया था। अब तक **आर्यदर्पण** वैदिक यंत्रालय में ही छपता रहा। किन्तु इस प्रेस से नाता टूट जाने के कारण मुन्शीजी ने अपने नगर शाहजहांपुर में अपना अलग प्रेस **आर्यदर्पण** यंत्रालय के नाम से स्थापित कर लिया और यह पत्र वहीं से छपने लगा।

सितम्बर १८८० से **आर्यदर्पण** में स्वामीजी दयानन्द रचित **'भ्रान्ति-निवारण'**[७] पुस्तक की आलोचना छपी। इस समीक्षा से ज्ञात होता है कि दयानन्द कृत वेद भाष्य के खण्डन में पं. गोविन्दराम नामक किसी व्यक्ति ने कोई पुस्तक लिखी थी तथा लाहौर से छपने वाले **'बिरादरे हिन्द'** पत्र में पं. शिवनारायण अग्निहोत्री ने भी इस विषय पर कई लेख लिखे थे। नवम्बर १८८० के **आर्यदर्पण** के अंक में कलकत्ता में स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों के खण्डन में आयोजित **आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा** का वृतान्त छपा है।[८] इस सभा का अधिवेशन कलकत्ता विश्वविद्यालय के सेनेट हाल में आयोजित किया गया था। सभा में एक दक्षिणी पण्डित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (सनातनी पक्ष का प्रमुख प्रवक्ता) के अतिरिक्त पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न[९], पं. जीवानन्द विद्यासागर[१०] आदि विद्वान् तथा कलकत्ता के अनेक गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। सभा के विचारार्थ पं. न्यायरत्न ने स्वामी दयानन्द के विचारों को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया तथा इन पर वहां उपस्थित पण्डितों के विचार जानने चाहे। पूर्वपक्ष के रूप में रखे गये पांच प्रश्नों के उत्तर पौराणिक सनातनधर्मी चिन्तन

के अधार पर पं. रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने दिया और इस सभा को एक सर्व सम्मत प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए मना लिया जिसमें कहा गया था कि दयानन्द प्रतिपादित सभी मन्तव्य वेदादिशास्त्रों के प्रतिकूल हैं। इन्हीं शास्त्री जी ने सभा की समाप्ति के पूर्व स्वरचित पुस्तक **'दयानन्द कण्टकोद्धार'** पढ़ कर सुनाई। **आर्यदर्पण** में इस सभा का विवरण[11] छपने के पश्चात् सम्पादक ने स्वमत प्रकट करते हुए लिखा है कि उक्त सभा के आयोजकों की समस्त कार्यवाही पक्षपतापूर्ण तथा पूर्वग्रह ग्रस्त थी। अन्यथा ३०० पण्डितों की सभा थोड़े से समय में इन महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर किसी निर्णय पर आ जाये, यह सम्भव ही नहीं है।

आर्यदर्पण में प्रकाशित उक्त सामग्री के सिंहावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्वामी दयानन्द के विविध क्रिया-कलाप तथा उनके द्वारा किये गये अनेक धार्मिक शास्त्रार्थों की प्रामाणिक जानकारी इस पत्र के इन अंकों में सुरक्षित की गई है। काशी शास्त्रार्थ, हुगली शास्त्रार्थ तथा मेला चांदापुर में हुई धर्मचर्चा का प्रथम प्रामाणिक विवरण **आर्यदर्पण** ने ही प्रस्तुत किया था। जब मुन्शी बख्तावरसिंह को वैदिक यंत्रालय के प्रवन्धक पद से मुक्त कर दिया गया तो आर्यसमाज से उनका सम्वन्ध टूट गया। अब **आर्यदर्पण** में आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल लेखों में कमी आ गई और अन्यान्य विषय प्रमुखता से छपने लगा।

यह पत्र १६०६ तक छापता रहा। मुन्शी बख्तावरसिंह चाहे स्वामी दयानन्द के प्रति वफादार नहीं रहें, किन्तु **आर्यदर्पण** में उन्होंने जो महत्वपूर्ण सामग्री उस दौरान छापी वह इतिहास की बहुमूल्य धरोहर सिद्ध हुई। इस पत्र की दो फाइलें परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

भारत सुदशा प्रवर्त्तक-आर्यसमाज फर्रूखाबाद का मुख पत्र

भारत सुदशा प्रवर्त्तक[12] वह मासिक था जिसे आर्यसमाज फर्रूखाबाद ने अपने मुख पत्र के रूप में जुलाई १८७६ से प्रकाशित करना आरम्भ किया। प्रारम्भ में इसका नाम **भारत दुर्दशाप्रमर्दक** था किन्तु स्वामी दयानन्द ने इसका नाम बदल कर **भारत सुदशा प्रवर्त्तक** कर दिया। प्रारम्भ में इसके सम्पादक एक महाराष्ट्रीय सज्जन गोपाल हरि पुण्तांकर रहे।[13] बाद में पं.

गणेशप्रसाद शर्मा[१४] ने कई वर्षों तक इसका सम्पादन किया। इसका वार्षिक मूल्य २ रुपये था। इस पत्र की कई पुरानी फाइलें लालचंद लाइब्रेरी डी.ए.वी. कॉलेज चण्डीगढ़ में सुरक्षित हैं। इस पत्र की पुरानी फाइलों के अध्ययन से स्वामी दयानन्द के विचारों और कार्यों की तथ्यपूर्ण जानकारी मिलती है। उनके वेदभाष्य लेखन तथा विभिन्न नगरों में धर्म प्रचारार्थ जाने का उल्लेख इन अंकों में हुआ है। अजमेर, उदयपुर, शाहपुरा तथा जोधपुर में स्वामीजी के निवास के यहां छपे विवरणों के आधार पर ही स्वामीजी की जीवनी के लेखक उन स्थानों की प्रचार यात्राओं का वृत्तान्त लिख सके थे। स्वामीजी को वेदभाष्य के प्रकाशन के लिए जो आर्थिक सहायता आर्य पुरुषों तथा आर्यसमाजों से मिलती थी, उसका विवरण भी इन अंकों में छपता था। **भारत-सुदशा प्रवर्त्तक** में कुछ छोटे-छोटे नाटक भी छपते थे जो यद्यपि समाज सुधार की विचारधारा पर आधारित होते थे किन्तु स्वामीजी इनका छपना नापसन्द करते थे। उन्होंने १६ अक्टूबर १८८२ को फर्रूखाबाद आर्यसमाज के मंत्री लाला कालीचरण को भविष्य में इस पत्र में नाटक न छापने का आदेश दिया।[१५]

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक तथा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की स्कूलों के इन्सपैक्टर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का स्वामी दयानन्द से वेद संहिताओं की भांति ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा को लेकर शास्त्रीय वाद हुआ था। जनवरी १८८२ के अंक में पं. हरि मिश्र नामक एक विद्वान् का राजा साहब को सम्बोधित एक पत्र छपा है। इसमें राजा शिवप्रसाद की ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानने की मान्यता पर अनेक शंकाएं उठाई गई हैं। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास के अन्त में अल्लोपनिषद् की चर्चा की है तथा लिखा है कि मुसलमानी शासन काल में किसी व्यक्ति ने इसकी रचना की है। जून १८८२ के **'सुदशा प्रवर्त्तक'** में इस कथित उपनिषद् के सम्बन्ध में एक रोचक तथ्य उल्लिखित है। कहते हैं कि मैसूर के नवाब हैदरअली के शासनकाल में पं. अहोवल शास्त्री नाम के एक विद्वान् ने इस संस्कृत-फारसी मिश्रित प्रकरण की रचना की। स्वामीजी के जयपुर तथा उदयपुर निवास का वर्णन इस पत्र के जून तथा दिसम्बर १८८२ के अंकों में क्रमशः छपा था।

फर्रूखाबाद निवासी पं. गोपाल हरि पुण्तांकर ने स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही **'दयानन्द दिग्विजयार्क'**[१६] नामक एक जीवनचरित की

रचना की थी। पं. दामोदर शास्त्री नामक किसी व्यक्ति ने इस पर कोई समालोचनात्मक पुस्तक लिखी तो आर्यसमाज फर्रूखाबाद के पं. लक्ष्मीदत्त[१६] ने उसका उत्तर लिखा जिसे **सुदशा-प्रवर्त्तक** ने अप्रैल १८८३ के अंक में छापा। पौराणिक पण्डित अकारण ही स्वामी दयानन्द के बारे में अलीक बातें कहते और छापते रहते थे। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् पं. अम्बिकादत्त व्यास ने स्वसम्पादित **'वैष्णव-पत्रिका'** के एक अंक में लिखा कि उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह[१७] द्वारा स्वामी दयानन्द से मनुस्मृति और विदुरनीति पढ़ने की बात मिथ्या है। जुलाई १८८३ के अंक में **सुदशा प्रवर्त्तक** ने व्यास जी की इस टिप्पणी को असत्य बताया।

जुलाई १८८३ के **भारत सुदशा प्रवर्त्तक** में स्वामी दयानन्द का इस पत्र के सम्पादक के नाम एक पत्र छपा जिसमें मि. ए.ओ. ह्यूम[१८] के वेद विषयक विचारों की आलोचना की गई थी। मि. ह्यूम का कहना था कि यदि स्वामी जी यह घोषित करदें कि उनका वेदभाष्य ईश्वर प्रेरित है तो लोग उसको निर्भ्रान्त मान लेंगे। इसके उत्तर में स्वामीजी का कहना था कि मैं ईश्वर नहीं, अपितु उसका उपासक हूँ। जितनी मेरी बुद्धि है और विद्या है, मैं उसी के अनुसार वेद का भाष्य कर रहा हूं। स्वामीजी द्वारा थियोसोफी के आचार्यद्वय-ऑल्काट[१९] और ब्लैवेट्स्की[२०] द्वारा दिखाये जाने वाले चमत्कार पूर्ण कृत्यों का भी खण्डन किया गया, जो इसी अंक में छपा।

पं. अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी **'वैष्णव पत्रिका'** में जहां स्वामीजी के विधवा विवाह समर्थन, मूर्तिपूजा निषेध आदि विचारों की आलोचना की वहां उनकी सहनशीलता, जातीय एकता के लिए किये गये उनके प्रयत्नों तथा ब्रह्मचर्य प्रचार आदि गुणों की प्रशंसा भी की थी। **भारत सुदशा प्रवर्त्तक** ने अपने सितम्बर १८८३ के अंक में वैष्णव पत्रिका के इस कथन को 'दोमुंहा' बताया। अक्टूबर के अंक में स्वामीजी के रुग्ण होने तथा उनके देह त्याग के समाचार को छापा। दिसम्बर १८८३ के अंक में यह खबर छपी कि दयानन्द की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना का निश्चय उस नगर के आर्य पुरुषों ने किया है। निश्चय ही **भारत सुदशा प्रवर्त्तक** की ये फाइलें स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज विषयक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानने का एक प्रामाणिक स्रोत हैं।

देशहितैषी-आर्यसमाज अजमेर का मुख पत्र

'देशहितैषी'[२१] मासिक पत्र का प्रकाशन अजमेर के आर्यसमाज ने वैशाख १६३६ वि. (१८८२ ई.) में किया। इसके प्रकाशक उक्त आर्यसमाज के मंत्री मुन्नालाल[२२] थे और इसका वार्षिक मूल्य केवल दो रुपये था। इस पत्र ने अपने प्रवेशांक (वैशाख १६३६ वि.) में स्वामी दयानन्द के प्रति प्रशंसापूर्ण उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा-"परमात्मा को धन्यवाद है कि उसने हमारे देश को मूर्खता और अविद्या के अंधकार से निकाल कर सत्य विद्या और धर्मरूपी सूर्य से प्रकाश किया है और हम लोगों के जीवनकाल में स्वामी दयानन्द सरस्वती सरीखे महात्मा सत्पुरुष को उत्पन्न किया।" जैसा कि हम लिख चुके हैं कि दयानन्द के समकालीन आर्य पत्रों में उनके बारे में जो तथ्य प्रकाशित किये गये, वे आगे चल कर उनकी जीवनी के लिखने में प्रमुख स्रोत बने। **देशहितैषी** के प्रथमांक में आर्यसमाज बम्बई के उस वार्षिकोत्सव का समाचार छपा जिसमें खुद स्वामीजी उपस्थित थे। ज्येष्ठ १६३६ के अंक में स्वामीजी के मसूदा निवास तथा वहां जैन साधु सिद्धकरण से शास्त्रार्थ करने का समाचार छपा।[२३] मसूदा निवासी पं. वृद्धिचन्द्र ने यह सामग्री इस पत्र में प्रकाशनार्थ भेजी थी।

आर्यदर्पण के प्रसंग में हम यह देख चुके हैं कि इसके संचालक-सम्पादक मुन्शी बख्तावरसिंह किस प्रकार वैदिक यंत्रालय के प्रबंन्धक पद पर कार्य करते हुए धन को गोलमाल के आरोप में इस पद से पृथक् कर दिये गये थे। अब वे स्वामीजी के प्रत्यक्ष विरोधी बन गये। जब आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी में मतभेद उत्पन्न हुआ तो मुन्शीजी की सहानुभूति इस सोसाइटी के प्रति अचानक उमड़ पड़ी। उसने **आर्यदर्पण** में लिखा-"स्वामीजी कभी कर्नल ऑल्काट को सच्चा आर्य बताते थे, आज उन्हें जादूगर कहते हैं। इसी प्रकार कभी कर्नल साहब स्वामीजी को अपना गुरु कहते थे, आज कहते है कि स्वामीजी योग विद्या नहीं जानते।" **देशहितैषी** ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि दूसरे की आंख के तिनके को देखने वाले खुद की आंख के शहतीर को नहीं देखते।

लाहौर से प्रकाशित होने वाला पत्र **'मित्रविलास'** स्वामीजी का घोर विरोधी था। उसमें स्वामी दयानन्द की आलोचना एकांगी और अतिरंजित रूप

से छपती थी। कलकत्ता में स्वामीजी के विरोध में आयोजित आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा, सत्यार्थप्रकाश के १२वें समुल्लास को लेकर गुजरांवाला के जैनी ठाकुरदास की आपत्तियां तथा थियोसोफी तथा आर्यसमाज के पारस्परिक विवाद को **मित्रविलास** ने खूब हवा दी। **देशहितैषी** ने इस पत्र में छपी इन एकांगी खबरों की आलोचना छापी। इसके लेखक ने इसे **'एक स्वतंत्र जीव'** नाम से छपवाया था। श्रावण १९३९ वि. के **देशहितैषी** में भारतेन्दु कालीन लेखक पं. राधाचरण गोस्वामी[२४] का **'स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज'** शीर्षक एक लेख छपा। गोस्वामीजी गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे, साथ ही उदार सामाजिक विचारों के धनी थे। स्वामी दयानन्द के सुधार कार्यों के प्रति उनकी पूर्ण सहानुभूति थी। इस लेख के साथ उन्होंने अपना नाम न देकर **'एक निष्पक्ष जीव, वृन्दावन'** लिखा, शायद इस आशंका से कि कहीं उनके सम्प्रदाय के अनुयायी उन्हें 'मूर्तिपूजा विरोधी नास्तिक' दयानन्द का भक्त न समझ बैठे।

स्वामी दयानन्द के उदयपुर विराजने का समाचार इस पत्र के कार्तिक १९३९ वि. के अंक में छपा। इसी अंक में कलकत्ता विश्वविद्यालय के सेनेट हॉल में स्वामी दयानन्द के विरोध में आयोजित आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा की कार्यवाही की लाहौर आर्यसमाज के सभासद लाला सांईदास वर्मा द्वारा लिखित आलोचना (जो 'एक आर्य' नाम से उर्दू में पुस्तकाकार छपी थी।) की चर्चा **'समालोचना स्तम्भ'** के अन्तर्गत प्रकाशित हुई। सम्पादक ने इस पुस्तक के उर्दू में लिखे जाने पर खेद व्यक्त किया तथा लिखा कि यदि इसे हिन्दी में लिखा जाता तो अधिकाधिक लोगों को लाभ मिलता। पौष १९३९ वि. के अंक में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि एवं निबंधकार पं. प्रतापनारायण मिश्र[२५] की एक कविता **'गीत दशावतार'** शीर्षक से छपी। इसमें विचित्र कल्पना का आश्रय लेकर स्वामी दयानन्द की तुलना पौराणिक दशावतारों से की गई थी। इस प्रकार **देशहितैषी** स्वामीजी की गतिविधियों और प्रवृत्तियों को उनके निधन काल तक प्रकाशित करता रहा।

आर्यसमाचार, मेरठ

यह पत्र आर्यसमाज का पहला उर्दू साप्ताहिक था जो मेरठ से छपता था। प्रारम्भ काल में इसके सम्पादक कल्याणराय थे। बाद में आर्यसमाज मेरठ

के मंत्री आनन्दलाल भी इसके सम्पादक रहे थे। स्वामी दयानन्द विषयक जो संदर्भ और सामग्री इसमें छपी थी, उसका विवरण यथाप्रसंग आगे के अध्यायों में दिया गया है।

दि आर्य मैगज़ीन-लाहौर से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक

आर्यसमाज का प्रथम अंग्रेजी मासिक **दि आर्य मैगज़ीन** स्वामी दयानन्द के जीवन काल में लाहौर से प्रकाशित होने लगा था। रतनचंद बेरी के सम्पादन में यह पत्र १ मार्च १८८२ को सैदमिट्ठा बाजार लाहौर से प्रथम बार निकला। पाठकों को यह जान कर सुखद आश्चर्य होगा कि स्वामीजी के जीवनकाल में ही उनके ऋग्वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद इस पत्र में छपने लगा था। मार्च १८८२ के इस पत्र के प्रवेशांक में **आर्य मैगज़ीन** ने ऋग्वेद के प्रथम मंत्र का दयानन्द कृत अर्थ छापा। इसी पत्र से ज्ञात होता है कि दयानन्द को उनके जीवनकाल में ही 'ऋषि' कह कर सम्बोधित किया जाने लगा था, कारण कि इसी अंक में ऋग्वेद के दयानन्द कृत भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए पत्र में लिखा-"Its theological sense is explained above as interpretated to us by Rishi Swami Dayanand Saraswati in his invaluable Veda Bhashya" अर्थात् वेद मंत्र का आध्यात्मिक अर्थ ऊपर उसी शैली में व्याख्यात किया गया है, जैसा ऋषि दयानन्द ने अपने अमूल्य वेदभाष्य में किया है। **आर्य मैगज़ीन** में यदा कदा हास्य और व्यंग्य की रचनाएं भी छपती थीं। एक ऐसी ही रचना 'एक चौबे और उसके यजमान' शीर्षक से इसी अंक में छपी है। यों तो उसमें तीर्थ-पण्डों की करतूतों पर प्रहार किया गया है किन्तु लेख के अन्त में एक यजमान स्वामी दयानन्द द्वारा हिन्दू धर्म एवं समाज के सुधार एवं पुनर्निर्माण का स्मरण करता है "Your religion is being revived and society improving by the indefeatible labour of the revered Swami Dayanand Saraswati" अर्थात् आपके धर्म और समाज का सुधार और पुनरुत्थान आदरणीय स्वामी दयानन्द सरस्वती के अथक प्रयासों से किया जा रहा है।

इस अंक के अन्तमें छपी सम्पादकीय टिप्पणियों के अन्तर्गत 'A Padri' शीर्षक टिप्पणी में अमेरिका के पादरी रेवरेण्ड जोसफ कुक के भारत आने

तथा बम्बई में स्वमत का प्रचार करने का उल्लेख है। इस प्रसंग में पत्र ने लिखा कि स्वामी दयानन्द तथा थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों ने पादरी कुक से ईसाई मत की सत्यता तथा उसके ईश्वरीय होने का प्रमाण मांगा है। आगे यह भी लिखा कि पादरी साहब ने उपर्युक्त विषय पर स्वामीजी से चर्चा करने की अपेक्षा चुपचाप पूना चले जाने में ही अपना हित समझा। स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं का एक परिणाम यह निकला आर्यसमाज लाहौर ने प्रौढ़ लोगों के लिए एक पाठशाला कायम की तथा नारी शिक्षण के लिए कन्या पाठशाला भी स्थापित कर दी। १८८२में जब भारत में स्त्री शिक्षा एक स्वप्न था, स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं से प्रभावित होकर कन्या शाला स्थापित करना सचमुच एक क्रांतिकारी कदम था।

आर्य मैगज़ीन के अप्रैल १८८२ के अंक में अमेरिकन पादरी जोसफ कुक को स्वामीजी द्वारा शास्त्रार्थ के लिए भेजे गये निमंत्रण की अंग्रेजी प्रति छपी है। यह पत्र स्वामीजी ने अपने बालकेश्वर स्थित निवास से १८ जनवरी १८८२ को भेजा था। हम देख चुके हैं कि पादरी महोदय ने स्वामीजी की शास्त्रार्थ की चुनौती को स्वीकार नहीं किया। इसी अंक में किसी थियोसोफिस्ट का रावलपिण्डी से भेजा पत्र छपा है। पत्र लेखक ने **आर्य मैगज़ीन** के सम्पादक को लिखा कि थोड़े दिन पहले पं. गोपीनाथ यहां (रावलपिण्डी) आया था और उसने एक व्याख्यान अपने गुरु पं. श्रद्धाराम की प्रशंसा में दिया। किन्तु उसका मुख्य लक्ष्य आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज की निंदा करना ही था। उसने स्वामी दयानन्द के बारे में भी अनेक निंदात्मक बाते कहीं। जब एक स्थानीय आर्य लाला हंसराज ने इसका उत्तर देना चाहा तो सभा के आयोजकों ने सभा की समाप्ति की घोषणा कर दी।

मई १८८२ के अंक में छपे सम्पादकीय में पं. गोपीनाथ के भाई गोविन्दसहाय द्वारा लाहौर के हरिज्ञान मंदिर में एक व्याख्यान देने का समाचार छपा है। यह व्यक्ति जातिप्रथा एवं मूर्तिपूजा का कट्टर समर्थक तथा स्वामी दयानन्द का कट्टर विरोधी था। उसने इस भाषण में भी स्वामीजी के बारे में अवाच्य बातें कहीं और उन्हें वेदव्यास का निंदक कहा, जब कि यह प्रामाणिक तथ्य है कि ब्रह्मसूत्र एवं महाभारत प्रणेता वेदव्यास के लिए स्वामीजी के मन में आदर का भाव सदा रहा है। जून के अंक में सिख से ईसाई बने खड्गसिंह के उस व्याख्यान का ज़िक्र है जो उसने लाहौर के अमेरिकन मिशन

स्कूल में स्वामीजी की आलोचना करते हुए दिया था। इस व्याख्यान में खड्गसिंह ने धरती की आयु मात्र ५८८६ वर्ष बताई। जब आर्यसमाज के अनुयायियों ने इस वक्ता द्वारा कही गई बातों का प्रतिकार करने के लिए समय मांगा तो ईसाई आयोजकों ने बत्तियां बुझा दीं और सभा की समाप्ति की घोषणा कर दी।

अप्रैल १८८२ के अंक में इस पत्र के सम्पादक ने आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के विचारों और सिद्धान्तों की समानता पर एक लेख लिखा था। किन्तु जब मार्च १८८२ में स्वामीजी ने इस सोसाइटी और आर्यसमाज के बीच सिद्धान्तों की दूरी को लक्ष्य में रखकर दोनों संस्थाओं के सम्बन्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी तो **आर्य मैगज़ीन** के सम्पादक को भी सारे तथ्यों का पता चला। जून १८८२ के अंक में सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखते समय उसके थियोसोफिकल सोसाइटी पर एक नोट लिखा। इसमें उसने स्वीकार किया कि अप्रैल के अंक में उसने दोनों संस्थाओं के बीच के सौहार्द और सौमनस्य की जो चर्चा की थी, उसका आधार **न्यूयार्क सन** नामक पत्र में छपा एक लेख था किन्तु अब तो थियोसोफिस्टों के वे दूषित भाव सब पर प्रकट हो गये हैं कि किस प्रकार उन्होंने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को अपना पैर जमाने में एक साधन के रूप में प्रयुक्त किया। उसने **फिलासोफिक इन्क्वायरर** नामक एक पत्र के १६ अप्रैल के अंक में किसी थियोसोफिस्ट के छपे लेख की भी चर्चा की जिसमें आर्यसमाज को एक विघटित तथा दलबंदी में ग्रस्त संस्था कहा और स्वामी दयानन्द को पुराण-पन्थियों से पराजित बताया। इस टिप्पणी में सम्पादक ने स्पष्ट किया कि किस प्रकार स्वामीजी ने कर्नल और मैडम को उनके निकट आकर अपनी शंकाओं का समाधान करने तथा गलतफहमियों को दूर करने के लिए निमंत्रित किया था, किन्तु दोनों में से कोई भी नहीं आया। अन्ततोगत्वा स्वामीजी को थियोसोफी तथा आर्यसमाज के सम्बन्धों के समाप्त होने की घोषणा करनी पड़ी।

जुलाई १८८२ के अंक में स्वामी दयानन्द द्वारा **थियोसोफिस्ट** में छपाई अपनी आत्मकथा की एक किस्त उस पत्र से लेकर प्रकाशित की गई है। यह किस्त मूलशंकर के गृहत्याग तक की घटनाओं का उल्लेख करती है।

लुधियाना निवासी मुन्शी अलखधारी स्वामी दयानन्द के भक्त और प्रशंसक थे। १ मई १८८२ को उनका निधन हुआ। इस प्रखर सुधारक के एक प्रशंसक ने उनका संक्षिप्त जीवन चरित अगस्त १८८२ के अंक में छपाया। इस लेख के अन्त में स्वामीजी का उल्लेख कर उन्हें बाबा नानक, कबीर तथा चैतन्य के समकक्ष कहा गया है तथा इनकी लोकप्रियता का कारण बताते हुए लिखा कि ये वे महापुरुष थे जिनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था। जब आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध समाप्त हो गये तो स्वामी दयानन्द द्वारा उठाई गई आपत्तियों और थियोसोफी के नेताओं के विश्वासों में झलकने वाली असंगतियाँ, विरोधाभास तथा पाखण्ड एवं अंधविश्वासों को प्रश्रय देने वाली उनकी प्रवृत्तियाँ लोगों के सामने आ गईं। स्वामीजी ने भी अपने द्वारा प्रकाशित विज्ञापन **'थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल'** में इन सब बातों पर विस्तार से लिखा। कर्नल ऑल्काट ने इसके उत्तर में **थियोसोफिस्ट** का एक एकस्ट्रा सप्लिमेंट जुलाई १८८२ में छापा जिसमें स्वामीजी के आक्षेपों का उत्तर दिया गया था। अगस्त १८८२ के **आर्य मैगज़ीन** के अंक में जे.के. नामक एक लेखक ने 'थियोसोफी के संस्थापकों की सफाई' शीर्षक एक लेख में उक्त सप्लिमेंट में उठाई गई बातों का निराकरण किया तथा इन लोगों द्वारा स्वामीजी पर किये गये आक्षेपों का भी सटीक उत्तर दिया। इस अंक में तीन पृष्ठों (१२६-१३१) में बम्बई में स्वीकार किये गये आर्यसमाज के २८ नियमों का अंग्रेजी अनुवाद छपा है। **थियोसोफिस्ट** के एकस्ट्रा सप्लिमेंट की आर्यसमाज में तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। अक्टूबर १८८२ के अंक में **आर्य मैगज़ीन** के प्रवासी संवाददाता ने इलाहाबाद से ३० अगस्त १८८२ को एक विस्तृत लेख उक्त सप्लिमेंट में छपी बातों के खण्डन में एक-एक बिन्दु को उठा कर लिख कर भेजा। इसमें कर्नल ऑल्काट द्वारा उठाई गई सभी बातों का सतर्क उत्तर दिया गया था। संवाददाता ने अपना नाम ए.सी.बी. लिखा है। इसी अंक के सम्पादकीय में स्वामी दयानन्द के एक आदेश की चर्चा है जिसमें कहा गया था कि आर्य पत्र में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हरगिज़ नहीं किया जाये। सर्वत्र आर्य शब्द का ही प्रयोग होना उचित है।

पौराणिक पण्डितों द्वारा कलकत्ता में आयोजित एक सभा की चर्चा आगे के अध्याय में आयेगी। आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा में उपस्थित शताधिक पण्डितों ने सर्वसम्मति से स्वामीजी के मन्तव्यों को अमान्य घोषित किया था। किन्तु पौराणिक समुदाय द्वारा दी गई दलीलें कितनी घटिया तथा भ्रमात्मक थीं, इसका पता भी सर्व साधारण को चल गया। आर्यसमाज लाहौर के प्रधान लाला सांईदास ने इस सभा की पक्षपातपूर्ण कार्यवाही की आलोचना **'एक आर्य'** शीर्षक एक उर्दू ट्रैक्ट में की थी। अक्टूबर १८८२ के अंक में सम्पादकीय में इसी लघु पुस्तिका की चर्चा है। सम्पादक के अनुसार इस उपयोगी पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद होना आवश्यक है।

फरवरी १८८३ के **आर्य मैगज़ीन** में योग विद्या के एक छात्र के अनुभव शीर्षक एक लेख छपा है। लेखक लिखता है कि १८७६ में मैडम ब्लैवेट्स्की की पुस्तक **'ईसिस अनवील्ड'** को पढ़ने से योग में मेरी रुचि उत्पन्न हुई। इसके बाद मैंने स्वामी दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका का उपासना प्रकरण पढ़ा। इससे मुझे ज्ञात हुआ कि आर्य लोग राजयोग (पतंजलि निरूपित अष्टांग योग) की साधना करते थे। लेख में आगे लेखक ने यम, नियम आदि योग के आठों अंगों पर लिखा है। इसी अंक में आर्यसमाज लाहौर में दिये गये लाला मदनसिंह के अंग्रेजी व्याख्यान को उद्धृत किया गया है। वक्ता ने अपना तर्क देते हुए सिद्ध किया है कि स्वामी दयानन्द समय की आवश्यकता थे। युग की आवश्यकताओं ने ही स्वामी दयानन्द को उत्पन्न किया और उनको हिन्दू सुधार आन्दोलन का अग्रणी बनाया। इस अंक में छपे सम्पादकीय में मुन्शी इन्द्रमणि के उस पत्र की चर्चा है जो उसने स्वामी दयानन्द की शिकायत के रूप में पत्र सम्पादक को भेजा था। सम्पादक ने अपने निजी विवाद को समाचारपत्रों में उछालने को अच्छा नहीं माना।

इस समय मेरे सामने **आर्य मैगज़ीन** की १८८३-८४ की फाइल है। मार्च १८८३ के इस पत्र के अंक में (पृष्ठ २१) आर्यसमाज मेरठ के मंत्री आनन्दलाल का सम्पादक के नाम एक पत्र छपा है। इसमें मुन्शी इन्द्रमणि द्वारा स्वामी दयानन्द पर लगाये गये कतिपय आरोपों की चर्चा करते हुए लिखा है कि किसी समय स्वामीजी ने कट्टर समर्थक रहे इन्द्रमणि आज उनके बारे में इस प्रकार की अनुचित बातें लिख रहें हैं। वे उस दिन को भूल गये जब

मुसलमानों द्वारा इन मुन्शीजी के विरुद्ध अदालत में मुकद्दमा दायर किया गया था और सहायता के लिए वे स्वामीजी की शरण में आये थे। पत्र की राय में यह आवश्यक है कि जनता को वास्तविकता से परिचित कराया जाये। आर्यसमाज इस मामले को शीघ्र एक पत्रक के रूप में प्रकाशित करेगा ताकि मुन्शीजी द्वारा फैलाए गये भ्रम का निवारण हो सके।

इस पत्र के अप्रैल १८८३ के अंक में लाला पूरनचंद लिखित एक लेख हमारे विरोधी (Our Opponents) शीर्षक छपा है। इसमें लेखक ने बताया है कि लाहौर का पत्र **'मित्र विलास'** स्वामी दयानन्द का प्रबल विरोधी है और वह स्वामीजी के विरोध में मिथ्या लिखने का कोई अवसर नहीं छोड़ता। उसे (मित्र विलास को) उदयपुर में स्वामी दयानन्द का महाराणा द्वारा आतिथ्य किया जाना तथा वहां रह कर धार्मिक पाखण्डों का खण्डन करना नहीं सुहाया। **आर्य मैगज़ीन** आगे लिखता है कि आर्यसमाज की तो नींव ही सत्य पर टिकी हुई है ओर जहां तक स्वामी दयानन्द का सम्बन्ध है, वे भी वेद और सत्य के लिए समर्पित हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग उस महापुरुष की तो कोई हानि नहीं करेगा किन्तु उससे आक्षेपकर्त्ता का कलुष ही उजागर होता है। इसी अंक में पृष्ठ ४४ पर फीरोजपुर आर्यसमाज के मंत्री बिशनसहाय का सम्पादक के नाम भेजा एक पत्र छपा। इस में उदयपुर महाराणा प्रदत्त निम्न धनराशियों का उल्लेख है-आर्यसमाज फीरोजपुर द्वारा संचालित अनाथालय के लिए ६०० रुपये, स्वामीजी के वेद-भाष्य के लिए १२०० रुपये, स्वामीजी के ब्रह्मचारी शिष्य रामानन्द के लिए २०० रुपये तथा उक्त अनाथालय की कन्याओं में जो सीने-पिरोने में दक्ष हों, उनके लिए २०० रुपये।

मई १८८३ के अंक में अन्तिम पृष्ठ संख्या ६८ पर मद्रास से प्रकाशित होने वाले **थिन्कर** (Thinker) में स्वामी दयानन्द विषयक टिप्पणी को उद्धृत किया गया, जिसका सार इस प्रकार है-"हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि इस समय स्वामी दयानन्द जन्मना ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित भ्रमात्मक पौराणिक कथाओं का पर्दाफाश कर रहे हैं। यद्यपि कई बातों में हमारा उनसे मतभेद है, किन्तु हम मानते हैं कि वे थियोसोफिस्टों की अपेक्षा भारत का अधिक कल्याण कर सकेंगे।" मि. ह्यूम तथा स्वामी दयानन्द में वेद भाष्य को लेकर

जो चर्चा चली, उसका उल्लेख अनेक पत्रों में किया गया था। **आर्य मैगज़ीन** के जून १८८३ के अंक में लाहौर के लाला जीवनदास[२७] का एक लेख छपा। इसमें मि. ए. ओ. ह्यूम द्वारा स्वामी जी के वेद भाष्य की प्रामाणिकता पर उठाये गये सवाल की समीक्षा की गई है। लेख के प्रारम्भ में लाला जीवनदास ने मि. ह्यूम की प्रशंसा करते हुए उन्हें भारतवासियों का तो सच्चा हितैषी बताया किन्तु उनके द्वारा स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य की आलोचना में लिखे गये 'No Revelation Infallable' (**थियोसोफिस्ट** के मार्च १८८३ के अंक में प्रकाशित) शीर्षक लेख का भी प्रतिवाद किया। मि. ह्यूम के इन आक्षेपों तथा स्वामीजी के उत्तरों की तत्कालीन पत्रों में पर्याप्त चर्चा हुई थी।

सितम्बर १८८३ के अंक में **आर्य मैगज़ीन** के एडिटोरियल नोट्स के स्तम्भ में स्वामी दयानन्द द्वारा उदयपुर और शाहपुरा के राजाओं को उपदेश प्रदान करने का उल्लेख हुआ है। साथ ही उदयपुर महाराणा द्वारा वेद भाष्य की सहायता के लिए उदारतापूर्वक दान देने तथा शाहपुरा नरेश द्वारा एक वैदिक धर्म प्रचारक को वेतन रूप में प्रतिमास तीस रुपये की सहायता देने को कृतज्ञतापूर्वक उल्लिखित किया है। पत्र की दृष्टि में इन दोनों राजाओं के ये कार्य निश्चित रूप से भारत के पुनरुत्थान में सहायक होंगे। अक्टूबर १८८३ के अंक में पृ. १७६ पर मद्रास प्रान्त के त्रिचनापली नगर निवासी एक व्यक्ति (इसने अपना संक्षिप्त नाम जे.पी.आर.एन. लिखा है) का रोचक पत्र छपा है। यह सज्जन लिखते हैं कि हमारे प्रान्त में हिन्दी जानने वाला कोई व्यक्ति नहीं है अतः आप हमें आर्यसमाज के नियमों का अंग्रेजी अनुवाद भेजें। वह यह भी लिखता है कि वैदिक सिद्धान्तों को जानने की उसकी प्रबल इच्छा है। पत्र लेखक ने स्वयं को वेद के प्रति समर्पित माना है, इसलिए कि उसका जन्म विशिष्टाद्वैत[२८] मत को माननेवाले परिवार में हुआ है। पत्र लेखक ने लिखा कि एक बार उसने स्वामीजी को पत्र भेजा था, किन्तु उसे उत्तर नहीं मिला। इस पत्र से यह तो सहज अनुमान होता है कि स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में धुर दक्षिण प्रान्त (मद्रास) तक उनके वैदिक मत की चर्चा होने लगी थी।

आर्य मैगज़ीन के नवम्बर १८८३ के अंक में फ्रेड्रिक फैन्थम नामक एक यूरोपियन का एक लेख 'The Olco-Blavaatskin School (ऑल्काट और

ब्लैवेट्स्की का सम्प्रदाय) शीर्षक से छपा। ये महानुभाव **'दिल्ली इम्पीरियल'** नामक कोई पत्र निकालते थे। यह लेख मुरादाबाद से २६ सितम्बर १८८३ को भेजा गया थ। लेखक ने विस्तार में जाकर थियोसोफिकल सोसाइटी के मतवाद की आलोचना की है। उसने लिखा कि न्यूयॉर्क से थियोसोफी के संस्थापकों द्वारा पं. दयानन्द सरस्वती को भेजे गये उन पत्रों को मैंने पढ़ा है जिनमें वे स्वामीजी को अपना आदरास्पद गुरु कहते हैं तथा उनके चरणों में बैठ कर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। लेखक ने यह भी माना कि भारत आने के बाद थियोसोफी के नेताओं के विचारों में परिवर्तन आ गया और अब वे अपने आपको अदृश्य महात्माओं के प्रचारक बताने लगे हैं। इस विचार परिवर्तन का ही फल था कि स्वामी दयानन्द और थियोसोफिस्टों में टकराव की स्थिति बनी। लेख के अवशिष्ट अंश में लेखक ने थियोसोफिस्टों द्वारा चमत्कारों में विश्वास करने की आलोचना की तथा कर्नल और मैडम के चरित्रगत अन्तर्विरोधों का खुलासा किया।

नवम्बर १८८३ के **आर्य मैगज़ीन** में स्वामी दयानन्द के निधन के समाचार पृष्ठ १६६ पर छपे। Obituary (शोक संवाद) शीर्षक एक लघु लेख में बताया गया कि जब यह अंक प्रेस में भेजा जा रहा था, ३० अक्टूबर १८८३ को अजमेर में स्वामीजी के निधन के समाचार हमें मिले। स्वामीजी के निधन को इस पत्र ने देश की अपूरणीय हानि बताया। स्वामीजी के वैदिक ज्ञान का उल्लेख करते हुए सम्पादक ने लिखा कि वे सभी मानवीय गुणों की खान थे। वे सच्चे देशभक्त तथा योगी थे। जब स्वामीजी की आत्मा ने देहत्याग किया, उस समय भारत के प्रत्येक हिन्दू के घर में दीपावली के दिये जल रहे थे किन्तु आर्य धर्म का दीपक बुझ रहा था। अन्त में पत्र ने यह संकेत दिया कि स्वामीजी की मृत्यु के विस्तृत समाचार आर्यसमाज अजमेर से प्राप्त होने पर अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे। इस अंक के अंत में **'स्वामी दयानन्द सरस्वती'** शीर्षक एक अंग्रेजी शोक गीतिका छपी। इस गीत के प्रणेता का नाम नहीं दिया गया।

आर्य मैगज़ीन के दिसम्बर १८८३ के अंक में स्वामी दयानन्द के देहान्त के बारे में अधिक सामग्री छपी जिसमें दिवंगत महापुरुष को दी गई श्रद्धांजलियां तथा विभिन्न पत्रों में छपे समाचारों का संग्रह किया गया था।

उत्तर-पश्चिमी प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के बलिया नगर के एक निवासी बी.डी.एस. द्वारा ५ नवम्बर १८८३ को भेजा गया एक लेख इस पत्र में छपा। लेखक ने २ नवम्बर के **पायोनियर** में स्वामीजी के निधन का समाचार पढ़ा था। उसके अनुसार स्वामीजी उत्तर भारत की जनता के उत्थान के लिए विगत अनेक वर्षों से भरपूर प्रयत्न कर रहे थे। लेखक यद्यपि न तो आर्यसमाजी है और न वह स्वामी दयानन्द के विचारों को सर्वांश में स्वीकार करता है, तथापि वह स्वामी दयानन्द के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करना आवश्यक समझता है, इसलिए कि इस महापुरुष ने अपना सारा जीवन देश के उत्थान के लिए अर्पित कर दिया था।

आर्यसमाज मेरठ ने ४ नवम्बर १८८३ को स्वामीजी को श्रद्धासुमन अर्पित करने के लिए एक शोकसभा आयोजित की। श्री गणेशीलाल ने इस सभा का वृत्तान्त ६ नवम्बर १८८३ को इस पत्र में प्रकाशनार्थ भेजा। इस सभा में मेरठ आर्यसमाज के सभासद बाबू ज्योतिस्वरूप ने स्वामीजी का बहुविध गुणानुवाद किया और बताया कि वे उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े महापुरुष थे। जब यह शोक श्रद्धांजलि दी जा रही थी, श्रोताओं की आंखें आंसुओं से नम थीं तथा लोगों के मुख से निकली दुःख की आहें वातावरण को ग़मगीन बना रही थीं।

आर्यसमाज बिलासपुर के मंत्री ने **आर्य मैगज़ीन** में छपाने के लिए एक अंग्रेजी की शोक गीतिका (elegy) भेजी जो यथा स्थान छपी। स्वामी दयानन्द के निधन पर शोक व्यक्त करने वालों में उनके भक्त और अनुयायी ही नहीं थे, अन्य वे लोग भी थे जिनका आर्यसमाज से कभी सीधा सम्बन्ध नहीं रहा। लखनऊ की 'सत्यार्थमार्ग-थियोसोफिकल सोसाइटी' के मंत्री ज्वालाप्रसाद सांख्यधर ने इस पत्र के सम्पादक को पत्र लिखकर अपनी संस्था द्वारा स्वामीजी के निधन पर स्वीकार किये गये शोक प्रस्ताव की प्रति भेजी। फ्रैड्रिक फेन्थम ने पत्र सम्पादक को भेजे अपने पत्र में लिखा कि स्वामी दयानन्द उनके गहरे मित्र थे। उनका निधन उसके लिए गहरा आघात है। स्वामीजी के निधन पर १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना करने वाले मि. ए.ओ. ह्यूम ने **आर्य मैगज़ीन** के सम्पादक रतनचंद बेरी को एक निजी पत्र लिखा जिसमें स्वामी दयानन्द को एक महान् भद्र पुरुष बताया गया था। वे

अपने देश से असीम प्रेम करते थे। **प्लैटोनिक अमेरिका** नामक एक अमरीकी पत्र के सम्पादक टी.एम. जॉनसन ने ओसिएला (अमेरिका) से १४ सितम्बर १८८३ को **आर्य मैगज़ीन** के सम्पादक को एक पत्र लिखा जिसमें भारत के नैतिक और बौद्धिक पुनरुत्थान हेतु स्वामी दयानन्द द्वारा किये जाने वाले प्रयासों की प्रशंसा की गई थी। राजकोट के एम.जगजीवनदास ने स्वामीजी के निधन पर शोक प्रकट करते हुए आर्य दर्शन के अनुसार उनके पुनर्जन्म की कामना की और आशा प्रकट की कि अगले जन्म में उन्हें देशोत्थान के काम को करने में किसी बाधा का सामना नहीं करना पड़ेगा। मेरठ के आर.एस.डी.सी. ने एक पत्र द्वारा सम्पादक से पूछा कि क्या स्वामीजी के जीवन के उत्तरार्द्ध का वृत्तान्त प्रकाशन के लिए उपलब्ध है? स्वामीजी द्वारा वेदों के कितने अंश का भाष्य किया जा चुका है और कितना शेष है?

आर्य मैगज़ीन (दिसम्बर १८८३) के सम्पादकीय में स्वामी जी के जोधपुर में रुग्ण होने और लगभग एक मास की अस्वस्थता भोगने के पश्चात् पंचतत्त्व को प्राप्त करने का जो विवरण दिया गया उसे यहां अक्षरशः प्रस्तुत किया जा रहा है। इस सम्पादकीय का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए भी है, क्योंकि यह स्वामीजी के निधन के लगभग एक मास बाद प्रकाशित हुआ था। यह भी ध्यान रहे कि स्वामीजी की मृत्यु का प्रमुख कारण उन्हें दूध में विष दिया गया था, साथ ही डाक्टर की जानबूझ कर की गई लापरवाही भी इसमें एक कारण बनी थी। किन्तु ये बातें बाद में, स्वामीजी के जीवनी लेखकों-विशेषतः पं. लेखराम और देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के शोध एवं अनुसंधान से विदित हुई थीं। इनका उल्लेख इस सम्पादकीय में न मिलने से कोई यह अनुमान न लगाये कि स्वामीजी की मृत्यु स्वाभाविक थी। आगे **आर्य मैगज़ीन** के **'सम्पादकीय'** के हिन्दी अनुवाद को पढ़ें-

स्वर्गीय स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द की मृत्यु पर भारत के सभी समाचार पत्रों ने शोक व्यक्त किया। यह घटना इस प्रकार घटित हुई। २६ सितम्बर १८८३ को स्वामीजी जुकाम से पीड़ित हुए और २८ सितम्बर को उनके उदर में भयंकर पीड़ा हुई। इसका शमन करने के लिए उन्होंने पर्याप्त मात्रा में पानी पिया और उसे

वमन के द्वारा बाहर निकाला, किन्तु रोग का निवारण तब भी नहीं हुआ। ३० सितम्बर को उन्होंने गरम पानी में अजवाइन के क्वाथ का सेवन किया। इससे उन्हें कुछ दस्त हुए। १ अक्टूबर को उनके बीमार होने की खबर महाराजा जोधपुर को मालूम हुई। उन्होंने डा. अलीमर्दान खां को उनकी चिकित्सा में लगाया। ३ अक्टूबर तक चिकित्सा की गति धीमी रही, किन्तु ४ अक्टूबर से काफी मात्रा में रेचक गोलियां दी गई जिससे उनकी स्थिति और बिगड़ गई। परिणाम यह हुआ कि दस्तों की संख्या बढ़ गई और स्वामीजी के स्वस्थ शरीर में एकदम निर्बलता आ गई। उनके चेहरे, मुँह तथा गले में छाले पड़ गए, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें बोलने में कठिनाई महसूस होने लगी। अब उन्हें पलंग से उठने तथा करवट बदलने में भी दूसरों की सहायता लेनी पड़ने लगी। १६ अक्टूबर तक डा. अलीमर्दान का इलाज चलता रहा। बीच-बीच में डा. सूरजमल भी उसे परामर्श देते रहे। स्वामीजी को थोड़ा भी आराम नहीं मिला, किन्तु अब निरन्तर हिचकी चलने के कारण अतिरिक्त कष्ट हो गया। इस समय डा. ऐडम[३०] को बुलाया गया। उन्होंने वायु परिवर्तनार्थ स्वामीजी को आबू पर्वत पर ले जाने की राय दी। महाराजा ने इस कठिन अवस्था में उन्हें अन्यत्र भेजने से इंकार कर दिया किन्तु जब स्वामीजी ने पर्वत पर जाना स्वीकार कर लिया तो जोधपुर नरेश इसके लिए राजी हो गए।

महाराजा ने स्वामीजी को दो हजार रुपये भेंट किए, जिन्हें स्वामीजी ने तुरन्त आर्यसमाज बम्बई को भेज दिया।[३१] स्वामीजी के साथ शाही तम्बू, छह ऊँट सवार, तीन रथ, चार पालकी, एक बग्घी, छह सशस्त्र रक्षक तथा छत्तीस कहार-पालकी उठाने के लिए-यह सब यात्रा की सुविधा के लिए भेजे गए। महाराजा स्वयं स्वामीजी को आदर देने के लिए उनकी पालकी के साथ दो हजार कदम तक पैदल गये और उन्हें विदा किया। महाराजा ने स्वामीजी की चिकित्सा कर उन्हें स्वस्थ कर देने वाले किसी भी योग्य डॉक्टर को दो हजार रुपये पुरस्कार रूप में देने का विज्ञापन भी किया।

जब स्वामीजी आबूपर्वत पर पहुंचे तो डा. लक्ष्मणदास[३२] नामक एक पंजाबी डाक्टर ने उनका इलाज शुरू किया। उन्हें इतनी सफलता भी मिली कि कुछ ही दिनों में हिचकी तथा दस्तों का प्रकोप बन्द हो गया। उस डाक्टर ने

उन्हें अजमेर आ जाने का परामर्श दिया। अपने इलाज की सफलता को देखकर डा. लक्ष्मणदास ने स्वामीजी के पूर्णतया स्वस्थ होने तक यही इलाज चालू रखना चाहा। किन्तु इस बीच डाक्टर लक्ष्मणदास का तबादला हो चुका था और उसे एक दिन भी आबू में रहने की इजाजत नहीं थी। इस पर उसी दिन डाक्टर ने नौकरी से अपना इस्तीफा दे दिया, किन्तु उसे भी स्वीकार नहीं किया गया। अतः डा. लक्ष्मणदास को मज़बूर होकर अजमेर जाना पड़ा। इससे पहले उसने स्वामीजी को अजमेर आने के लिए कहा किन्तु इसके लिए वे सहमत नहीं हुए। उनके साथ वालों ने अनुभव किया कि डा. लक्ष्मणदास की चिकित्सा सफल हो रही है, अतः अत्यन्त आग्रह कर वे स्वामीजी को अजमेर ले आए। यद्यपि स्वामीजी वहां जाना नहीं चाहते थे।[३३] अजमेर में डाक्टर लक्ष्मणदास के पूरे प्रयास करने पर भी स्वामीजी की बीमारी बढ़ती गई, अचानक खतरनाक हो गई और ३० अक्टूबर की सायं तक स्थिति काबू से बाहर हो गई।

मृत्यु के एक घण्टे पहले स्वामीजी अपनी शय्या से उठे और स्वयं को पूर्ण स्वस्थ बताया। उसी अवस्था में बैठकर उन्होंने पर्याप्त समय तक परमेश्वर का ध्यान किया, पुनः शय्या पर बैठ कर सब लोगों को दूर जाने के लिए कहा। उपस्थित लोग उनके पीछे आकर खड़े हो गये। तब उन्होंने हिन्दी में परमात्मा का गुणानुवाद किया। तत्पश्चात् कुछ वेद मंत्रों का उच्चारण किया और गायत्री मंत्र का पाठ किया। अब उन्होंने करबद्ध होकर परमपिता को प्रणाम किया तथा बायीं करवट लेटकर स्वेच्छा से स्वात्मा को शरीर से पृथक् कर दिया।

मृत्यु के समय उनकी आयु ५९ वर्ष की थी। अन्तिम क्षण तक वे पूर्णतया सचेत थे। उनके शरीर को गेरुवे रंग के शॉल से ढक दिया गया तथा उसे एक काष्ठ तख्त पर लिटाकर श्मशान भूमि पर ले जाया गया। इस काष्ठ-शय्या को केलों के पत्तों तथा छोटी पताकाओं से सज्जित किया गया था। उनकी शवयात्रा में सभी वर्गों के लोग थे-बंगाली, पश्चिमोत्तर प्रान्त (उत्तरप्रदेश) के तथा मारवाड़ी। मार्ग में सब लोग वेद मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे। स्वामीजी की अंत्येष्टि में दो मन चंदन की लकड़ी, आठ मन साधारण लकड़ी, चार मन घी तथा अढाई सेर कपूर प्रयुक्त किया गया।

आर्य मैगज़ीन के उसी अंक में कर्नल ऑल्काट के नवम्बर १८८३ में लाहौर आने तथा १८ और २१ नवम्बर को दो व्याख्यान देने का उल्लेख हुआ है। अपने व्याख्यान में कर्नल ने स्वामी दयानन्द के निधन पर दुःख प्रकट किया। उन्होंने स्वामीजी को अपने युग का महत्तम प्रबुद्ध व्यक्ति बताया, साथ ही उन्हें परम देशभक्त तथा ऐसा वीर बताया जो देशहित के लिए स्वयं को न्यौछावर करने के लिए तत्पर था। अपने भाषण में उन्होंने यह भी आशा व्यक्त की कि स्वामी दयानन्द की स्मृति में कोई उपयुक्त स्मारक अवश्य बनाया जाएगा।

आर्य मैगज़ीन के इस अंक में स्वामी दयानन्द का स्मारक ऐंग्लो वैदिक कॉलेज के रूप में बनाने के लिए एक मार्मिक अपील छपी। इस अपील में देश के राजाओं और जमींदारों, सर्वसाधारण लोगों, हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों तथा पारसियों से प्रार्थना की गई थी कि वे उदारतापूर्वक उपर्युक्त कॉलेज की स्थापना के लिए दान दें। यह भी कहा गया कि यह दानराशि डी. ए.वी. कॉलेज निर्मातृ समिति के प्रधान लाला मदनसिंह (आर्यसमाज लाहौर के मंत्री) को भेजी जाए। संकेत दिया गया कि यह धन बंगाल बैंक में जमा होगा। ६ नवम्बर १८८३ को आर्यसमाज लाहौर की अंतरंग सभा की बैठक हुई। इसमें स्वामी दयानन्द की स्मृति में कॉलेज बनाने के निश्चय को औपचारिक स्वीकृति दे दी गई। एतदर्थ धन संग्रह के लिए एक समिति बनाई गई जिसके प्रधान लाला लालचंद तथा मंत्री भाई जवाहरसिंह[34] नियुक्त किये गये। इस समिति में अन्य सात व्यक्तियों को सदस्य रूप में रखा गया।

लाहौर में स्वामी दयानन्द की श्रद्धाञ्जलि सभा

आर्यसमाज लाहौर के भवन में ८ नवम्बर १८८३ को एक बृहत् सभा आयोजित की गई। इसमें उपस्थित लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। सभा में भाई जवाहरसिंह ने प्रारम्भिक भाषण दिया। तत्पश्चात् लाला गुरुदत्त[35] और लाला जीवनदास को श्रोताओं के समक्ष लाया गया जो स्वामीजी की चिकित्सा में सहायता के लिए आर्यसमाज लाहौर द्वारा अजमेर भेजे गए थे। लाला गुरुदत्त ने उन कारणों को बताया जो स्वामीजी की मृत्यु के हेतु बने। साथ ही यह भी बताया-किस प्रकार शान्ति तथा निरुद्विग्न भाव से स्वामीजी ने मृत्यु

का आलिंगन किया। उनका यह भी कहना था कि अन्तिम श्वास लेने के पहले स्वामीजी ने ईश्वर का गुणगान किया तथा वेदमंत्रों और गायत्री मंत्र का उच्चारण किया। बाद में लाला जीवनदास ने भी स्वामीजी के जीवन के अन्तिम क्षणों का विवरण दिया। इन दोनों के बोल चुकने पर भाई जवाहरसिंह ने स्वामी दयानन्द के स्मारक रूप में डी.ए.वी. कॉलेज की स्थापना का प्रस्ताव रखा और इसके लिए लोगों से उदारतापूर्वक दान देने का अनुरोध किया। यद्यपि इस सभा में अधिकांश मध्यम वर्ग के लोग ही उपस्थित थे किन्तु सात-आठ हजार की राशि तो तुरन्त सभास्थल पर ही एकत्र हो गई। सभा के अन्त में भाई जवाहरसिंह ने स्वामीजी की वसीयत (स्वीकार-पत्र) को पढ़कर सुनाया। यह शोकसभा चार घण्टों तक चली तथा रात के दस बजे समाप्त हुई। दिसम्बर १८८३ के इसी अंक में डी.ए.वी. कालेज के लिए दान देने वालों की सूची (धनराशि के साथ) भी छपी। इसमें मियां मोहम्मद ताजुद्दीन तथा मियां नज़र मोहम्मद द्वारा दस-दस रुपये देने का उल्लेख है। अनेक सिखों ने भी यथायोग्य चंदा दिया।

रिजेनेरेटर ऑफ आर्यावर्त-१८८२ में इस अंग्रेजी मासिक का प्रकाशन पं. गुरुदत्त द्वारा लाहौर से किया गया। इसमें लाला हंसराज तथा लाला लाजपतराय का सहयोग था। यह पत्र चार मास तक ही चल सका। इस पत्र के जनवरी १८८३ के अंक में स्वामी दयानन्द विषयक निम्न उल्लेख मिलता है-"लाहौर में स्वामी दयानन्द के भोजनादि का दो सप्ताह का व्यय ब्रह्मसमाज ने वहन किया। यह व्यय लगभग २५ रुपये था। किन्तु जब ब्राह्म लोगों ने यह अनुभव किया कि स्वामीजी ब्रह्मसमाज के सदस्य नहीं बनेंगे और न ही उनमें इतना सामर्थ्य है कि वे स्वामीजी को ब्राह्म धर्म में सम्मिलित कर लें, उन्होंने न केवल स्वामीजी के आतिथ्य सत्कार का व्यय देना बन्द कर दिया बल्कि उन्होंने एक मास के व्यय के लिए एकत्रित किये गये अग्रिम चंदे से उतनी रकम पहले ही काट ली, जो उन्होंने व्यय की थी।

इस अध्याय में हमने आर्यसमाज से सम्बद्ध पत्रों में स्वामी दयानन्द विषयक सन्दर्भों की चर्चा की है। **आर्यदर्पण, देशहितैषी, भारतसुदशा-प्रवर्त्तक** तथा **आर्य मैगज़ीन** की जो फाइलें हमें उपलब्ध हुई, उनकी सहायता से यह विवरण दिया गया है।

पाद टिप्पणियाँ

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द के विरोधी रहे। १८७० में उन्होंने स्वामीजी की आलोचना में चौसठ प्रश्नों की एक पुस्तक 'दूषण मालिका' छपवाकर प्रकाशित की। यह पुस्तिका भारतेन्दु ग्रन्थावली में प्रकाशित हुई है।

२. 'अथ शास्त्रार्थ और सद्धर्म विचार' पुस्तक काशी से गोपीनाथ पाठक ने लाइट प्रेस से मुंशी हरवंशलाल की सम्मति से छापी थी। इसकी एक दुर्लभ प्रति जयपुर महाराजा के निजी पुस्तक संग्रह पोथीखाने से डा. ब्रजमोहन जावलिया ने प्राप्त की। तदनन्तर यह रामलाल कपूर ट्रस्ट से १९८७ में छपी!

३. 'प्रतिमा पूजन विचार' को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १९३० वि. में काशी के लाइट प्रेस से छपवाया था। इसका दूसरा संस्करण पटना के खड्ग विलास प्रेस से १८८८ में छपा।

४. 'सत्यधर्म विचार' प्रथम बार उर्दू में १८७८ में छपा था। हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओं में वैदिक यंत्रालय से पुनः १८८० में छपा।

५. 'भ्रमोच्छेदन' वैदिक यंत्रालय काशी से १८८० में प्रथम बार छपा।

६. मुंशी समर्थदान सीकर जिले के नेठवा ग्राम के चारण थे। विस्तृत विवरण के लिए देखें-आर्यलेखक कोश पृ. ३२१।

७. 'भ्रान्ति निवारण' का प्रथम संस्करण वैदिक यंत्रालय काशी से १८८० में प्रकाशित हुआ।

८. पौराणिकों द्वारा आयोजित इस सभा का आर्यसमाज की दृष्टि से विवरण सर्वप्रथम 'रिसाला एक आर्य' के नाम से छपा था। इस उर्दू पुस्तिका के लेखक लाला सांईदास (प्रथम मंत्री आर्यसमाज लाहौर) थे। सम्प्रति प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु ने इस सामग्री का सम्पादित संस्करण 'महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ' शीर्षक से प्रकाशित किया है।

९. पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न भारत के प्रथम विद्वान् थे, जिन्हें अंग्रेज सरकार ने १८८७ में महामहोपाध्याय की उपाधि प्रदान की। स्वामी दयानन्द के वेद भाष्यके खण्डन में इन्होंने अंग्रेजी में एक पुस्तक । Few Remarks on Pt. Dayanand Saraswati's Veda Bhashya' शीर्षक से लिखी जो १८७६ में कलकत्ता से छपी।

१०. पं. जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् थे। उन्होंने कलकत्ता से अनेक संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन किया था।

११. इस सभा का विस्तृत विवरण (स्वामी दयानन्द के पक्ष सहित) पं. लेखराम ने स्वरचित दयानन्द जीवन चरित में निवद्ध दिया है। द्रष्टव्य-महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र, पृ. ६१२-६३८, २००० ई. का संस्करण।

१२. इस पत्र के विस्तृत परिचय के लिए लेखक की पुस्तक 'आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार' द्रष्टव्य है।

१३. गोपाल हरि पुण्तांकर के विस्तृत परिचय के लिए आर्य लेखक कोश, पृ. ६३, द्रष्टव्य है।

१३. विस्तृत परिचय के लिए देखें-आर्यलेखक कोश, पृ. ५६

१४. यह पत्र स्वामीजी ने उदयपुर से लिखा था। द्रष्टव्य-ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, सं.-पं. भगवद्दत्त, पृ. ३६६, वि.सं. २०१२

१५. दयानन्द दिग्विजयार्क का संक्षिप्त सम्पादित संस्करण इन पंक्तियों के लेखक ने तैयार किया था। यह आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली से१९७४ तथा १९८३ में छपा था।

१६. आर्यसमाज के प्रारम्भिक विद्वानों में पं. लक्ष्मीदत्त का नाम प्रायः आया है। ये पहाड़ी ब्राह्मण थे, किन्तु फर्रूखाबाद में आ बसे थे।

१७. महाराणा सज्जनसिंह का विस्तृत परिचय परोपकारिणी सभा के इतिहास में द्रष्टव्य है। ले.-डा. भवानीलाल भारतीय

१८. ए. ओ. ह्यूम आई.सी.एस. श्रेणी के अधिकारी थे। इनका पूरा नाम एलन आक्टेवियन ह्यूम (१८२६-१९१२) था। १८८५ में इन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की।

१९. कर्नल ऑल्काट (पूरा नाम हेनरी स्टील ऑल्काट) के परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी देखें।

२०. मैडम ब्लैवेट्स्की (पूरा नाम हेलेना पैट्रोव्ना ब्लैवेट्स्की) के विस्तृत परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी द्रष्टव्य है।

२१. इस पत्र का विस्तृत परिचय मैंने अपनी पुस्तक 'आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार' में दिया है।

२२. पूरा नाम मुन्नालाल शर्मा उप्रैती-परिचय के लिए देखें-आर्य लेखक कोश, पृ. १९६

२३. मसूदा शास्त्रार्थ के विवरण के लिए इस लेखक की पुस्तक 'दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह' द्रष्टव्य है।

२४. भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध लेखक पं. राधाचरण गोस्वामी यद्यपि गौडीय वैष्णव मठ के महन्त थे, किन्तु स्वामी दयानन्द के सुधारवादी विचारों से उनकी पूर्ण सहानुभूति थी। उन्होंने 'आर्य शब्द का उपपादन' शीर्षक पुस्तक लिखी जिसमें 'आर्य' शब्द का महत्त्व बताया गया था।

२५. पं. प्रतापनारायण मिश्र यद्यपि स्वतंत्र विचारों के थे, किन्तु स्वामी दयानन्द के सुधारवादी विचारों से वे पूर्णतया सहमत थे।अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में वे आर्यसमाज कानपुर के निकट सम्पर्क में रहे। स्वामीजी के निधन पर उन्होंने अपनी श्रद्धाञ्जलि पद्य रूप में अर्पित की। द्रष्टव्य-आर्यसमाज की हिन्दी काव्य को देन-डा. भवानीलाल भारतीय

२६. इस पत्र की तीन फाइलें (१८८२-८३, १८८३-८४ तथा १८८४-८५) इस लेखक के संग्रह में सुरक्षित हैं।

२७. लाला जीवनदास आर्य समाज लाहौर के प्रारम्भिक सभासदों में उल्लेखनीय थे। स्वामी दयानन्द की रुग्णावस्था में आर्यसमाज लाहौर ने उन्हें सेवार्थ अजमेर भेजा था।

२८. विशिष्टाद्वैत दर्शन के प्रस्तोता रामानुजाचार्य थे। इसमें जीव तथा प्रकृति को परमात्मा से पृथक् माना गया है। इस सिद्धान्त को प्रायेण स्वामी दयानन्द के दार्शनिक विचारों से निकट माना जा सकता है।

२६. यद्यपि इन महानुभाव का विस्तृत परिचय नहीं मिलता, किन्तु यह निश्चित है कि ये स्वामी दयानन्द के समकालीन थे। स्वामीजी के निधन पर इन्होंने जो शोक-संवेदना सूचक पत्र आर्य मैगज़ीन के सम्पादक को भेजा था, उसे मुंशीराम जिज्ञासु (स्वामी श्रद्धानन्द) तथा रामदेव के संयुक्त लेखन में लिखी गई पुस्तक The Arya Samaj and its Detractors : A Vindication के पृष्ठ ८ पर उद्धृत किया गया है।

३०. ये अंग्रेज डॉक्टर जोधपुर की रेजीडेन्सी में रेजीडेण्ट के निजी चिकित्सक थे।

३१. कुछ वर्ष पूर्व हमारे एक मित्र ने लिखा था कि जोधपुर नरेश ने स्वामीजी को कोई धन नहीं दिया। तब मैंने १८६८ में छपे स्वामी दयानन्द के एक जीवनचरित (कवि-किंकर मांगीलाल प्रणीत) से सिद्ध किया था कि महाराजा द्वारा प्रदत्त २००० रुपये की राशि स्वामीजी ने बम्बई के आर्यसमाज को भेज दी थी। द्रष्टव्य-वेदवाणी।

३२. डा. लक्ष्मणदास भेरा जिला (अब पाकिस्तान में) का निवासी 'आनन्द' उपजाति का खत्री था।

३३. जोधपुर में रुग्ण होने पर जब लोगों ने उनसे पूछा कि वे कहाँ जाना चाहते हैं तो स्वामीजी ने अपने विश्वसनीय भक्त राव बहादुरसिंह के ग्राम मसूदा (जिला अजमेर) जाने की इच्छा व्यक्त की थी।

३४. जन्मना सिख भाई जवाहरसिंह स्वामीजी के कट्टर अनुयायी थे, किन्तु कालान्तर में वे किसी कारण से पुनः सिख पन्थ में चले गये और अपने पंथिक संगठन में एक महत्त्वपूर्ण पद पर जा बैठे। विस्तार के लिए देखें-स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार का विश्लेषणात्मक अध्ययन (ले.-डा. भवानीलाल भारतीय)

३५. उन्नीस वर्षीय गुरुदत्त उस समय गवर्नमेण्ट कॉलेज लाहौर में विज्ञान के छात्र थे।

अध्याय ५

दयानन्द सरस्वती-गंगा के तटवर्ती प्रदेश में

समाचार-पत्र अपने युग की धड़कन होते हैं। उनमें सम-सामयिक घटनाओं का केवल चित्रण ही नहीं होता, वे अपने ज़माने के लोगों के भावों, विचारों और संकल्पों को भी अभिव्यक्ति देते हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सभी प्रकार के आन्दोलनों को वे जन-जन तक पहुँचाते हैं। स्वामी दयानन्द ने जब १८४६ में गृह-त्याग किया, उस समय उनकी अवस्था २२ वर्ष थी। पर्याप्त समय तक वे एक तत्त्व जिज्ञासु के रूप में स्व प्रान्त में यत्र-तत्र भ्रमण करते रहे। यह उनके भावी कार्यक्रम की तैयारी का काल था। गुजरात, राजस्थान, उत्तराखण्ड, पश्चिमोत्तर प्रदेश (उत्तरप्रदेश) तथा वर्तमान मध्यप्रदेश के नर्मदा तटवर्ती प्रान्त में वे अनेक स्थानों पर गये। अन्ततः मथुरा में दण्डी विरजानन्द से उन्होंने व्याकरणादि शास्त्रों का विशद् अध्ययन किया तथा इस प्रज्ञाचक्षु गुरु से शास्त्रालोचन के बारे में कुछ ऐसे गुर (Formula) प्राप्त किये जो उनके जीवन-दर्शन का मुख्य आधार बने। अध्ययन समाप्ति के पश्चात् वे पर्याप्त समय तक वेदों के गहन अनुशीलन में लगे रहे और अन्ततः धर्म और समाज में विराट् परिवर्तन लाने का संकल्प धारण कर कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया।

जिस समय स्वामी दयानन्द ने पश्चिमोत्तर प्रदेश (उत्तरप्रदेश) के गंगा-तटवर्ती प्रान्त में अपने विचारों का प्रचार आरम्भ किया उस समय तक भारत के अधिकांश भागों में समाचार-पत्रों का प्रचलन हो चुका था। पंजाब, जिसमें वर्तमान हिमाचल प्रदेश तथा हरियाणा सम्मिलित थे, पश्चिमोत्तर प्रदेश (उत्तरप्रदेश), बिहार, बंगाल, मद्रास और बम्बई (जिसमें गुजरात भी सम्मिलित था) आदि प्रदेशों में समाचार-पत्र छपने लगे थे। ज्यों-ज्यों स्वामी दयानन्द के धार्मिक सुधार कार्यों की चर्चा व्यापक होने लगी, इन पत्रों में उनका वृत्तान्त छपने लगा। कालान्तर में जब पं. लेखराम[1] तथा पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय[2]

ने स्वामी दयानन्द के विस्तृत खोजपूर्ण जीवनचरित लिखे तो उन्होंने इन पत्रों में प्रकाशित स्वामी दयानन्द विषयक सन्दर्भों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया। इन पत्रों ने न केवल स्वामीजी के भ्रमण और उनकी कार्य-प्रवृत्तियों को ही छापा अपितु उनके विचारों तथा कार्यप्रणाली पर भी उनके विचार प्रस्तुत किये। आगे के पृष्ठों में हम मुख्यतः कालक्रमानुसार तथा यत्र-तत्र विषय क्रम से सम-सामयिक पत्रों में आए दयानन्द विषयक सन्दर्भों की समीक्षा करेंगे।

जिस पत्र ने स्वामी दयानन्द का सर्वप्रथम वृत्तान्त छापा, वह कानपुर से प्रकाशित होने वाला उर्दू पत्र **'शोल-ए-तूर'** था। स्वामीजी का द्वितीय बार का कानुपर आगमन जुलाई १८६६ ई. में हुआ था। वे लाला दरगाहीलाल के द्वारा निर्मित गंगा के भैरवघाट पर ठहरे थे। **शोल-ए-तूर** ने २७ जुलाई १८६६ के अंक में स्वामी दयानन्द का स्वल्प परिचय इन शब्दों में दिया-"एकान्तवासी साधु हैं, अवधूतों की सी आकृति है। मन्दिर निर्माण और मूर्तिपूजा का प्रबल निषेध करते हैं। मथुरा में उन्होंने विद्या प्राप्त की। सुना है कि ३१ जुलाई १८६६ को तीन बजे घाट पर बड़ी सभा होगी और पं. हलधर ओझा उनसे संवाद (शास्त्रार्थ) करेंगे।"

पं. हलधर ओझा से मूर्तिपूजा पर स्वामीजी का जो शास्त्रार्थ हुआ उसमें मध्यस्थ के रूप में एक अंग्रेज अधिकारी मि. थेन (थेअर्स) उपस्थित थे।[3] कानपुर के एक धनाढ्य व्यक्ति पं. गुरुप्रसाद शुक्ल के कहने से **शोल-ए-तूर** के मालिक लाला जमनाप्रसाद ने ३ अगस्त १८६६ के इस पत्र के अंक में शास्त्रार्थ का जो विवरण छापा वह सर्वथा एकपक्षी था। यह शास्त्रार्थ ३० जुलाई १८६६ शनिवार को हुआ था। पं. गुरुप्रसाद ने **शोल-ए-तूर** पत्र के स्वामी को स्पष्ट निर्देश दिया कि तुम अपने पत्र में स्वामीजी के पराजित होने का वृत्तान्त छापोगे। जब उसने कहा कि यदि मैंने गलत छापा और विरोधी पक्ष (स्वामी दयानन्द) ने मुझ पर दावा किया तो हर्जाना कौन भुगतेगा। इस पर पं. गुरुप्रसाद ने कहा कि दस हजार तक का जुर्माना तो मैं अकेला दे दूंगा। इस प्रकार पं. गुरुप्रसाद के दबाव में आकर **शोल-ए-तूर** ने शास्त्रार्थ का जो इतिवृत्त छापा, उसका निष्कर्ष यही था कि हलधर शास्त्री के प्रश्नों का स्वामीजी कोई उत्तर नहीं दे सके, इसलिए ओझाजी की जय हुई और सरस्वतीजी (दयानन्द) की पराजय हुई।

कानपुर के निष्पक्ष लोगों को शोल-ए-तूर का यह गलत छापना पसन्द नहीं आया। वे सहायक जिलाधीश मि. थेन के पास गये और उन्हें समाचार-पत्र में छपे उस गलत समाचार के बारे में बताया। इस पर उस अंग्रेज अधिकारी ने स्पष्ट कहा कि शास्त्रार्थ में तो वह फकीर (साधु) जीता था। इन लोगों के आग्रह पर उन्होंने अपनी सम्मति लिखित रूप में भी दे दी।' शोल-ए-तूर ने तो अपने अंक में चाहे स्वामीजी को पराजित घोषित कर दिया किन्तु कानपुर की जनता ने सत्य तत्त्व को जान लिया था। परिणाम यह निकला कि मूर्तिपूजा से लोगों की आस्था समाप्त होने लगी और इस कार्य के प्रति कानपुरवासियों की विरक्ति इतनी बढ़ी कि कुछ लोगों ने पूजा की देवप्रतिमाओं को गंगा में विसर्जित कर दिया। जब हलधर ओझा को इस बात का पता चला तो उसने एक विज्ञापन छपाया जिसका आशय यह था कि जो लोग दयानन्द सरस्वती के मत के अनुसार अपने कुल धर्म को त्यागकर देव प्रतिमाओं को गंगा में फेंक रहे हैं वे अत्यन्त अनुचित कर रहे हैं। ऐसा करने वालों से हमारा निवेदन है कि मूर्तियों को नदी में फेंकने की अपेक्षा वे उन्हें उन मंदिरों में पहुंचा दें जो पं. गुरुप्रसाद शुक्ल और पं. प्रतापनारायण तिवारी ने निर्मित किये हैं। शोल-ए-तूर के ३ अगस्त १८६९ के अंक में इस घटना पर जो सम्पादकीय छपा उसका आशय था कि सरस्वतीजी की संगति के प्रभाव से जो लोग देव मूर्तियों को गंगा में डाल रहे हैं, पं. हलधर ओझा के अनुसार यह कार्य अनुचित है। जो लोग मूर्तियों को न रखना चाहें (न पूजना चाहें) वे हमारे पास पहुंचा दें। शोल-ए-तूर ने आगे चलकर अपने २३ सितम्बर १८६९ के अंक में स्वामी दयानन्द के अनुयायी पं. हृदयनारायण (मुंसिफ, महोबा) द्वारा प्रकाशित उस विज्ञापन को शब्दशः प्रकाशित किया जिसमें कानपुर शास्त्रार्थ का वस्तुनिष्ठ वर्णन दिया गया था तथा मि. थेन (थेअर्स) की वह अंग्रेजी टिप्पणी भी प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द की विजय घोषित की थी।

कानपुर में लगभग तीन मास तक रहकर स्वामी दयानन्द गंगा तट पर भ्रमण करते-करते काशी राज्य की राजधानी रामनगर (गंगा पर) आए और महाराजा काशी के राजप्रासाद के सामने एक वृक्ष के नीचे डेरा जमाया। यहां जब उन्होंने धाराप्रवाह संस्कृत में मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ किया तो

गंगातट के दूसरी ओर बसी काशी नगरी के पण्डितों में खलबली मच गई। स्वामीजी भी रामनगर से चलकर काशी आ गए और दुर्गाकुण्ड के निकट अमेठी के राजा के बाग में निवास किया[५]। काशी नरेश महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह के प्रबल आग्रह से यहां के पण्डितों को स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिए तैयार होना पड़ा, यद्यपि स्वपठित शास्त्रों को टटोल कर वे जान चुके थे कि वेदों में मूर्तिपूजा का विधान कहीं नहीं है।

पाद टिप्पणियां

१. पं. लेखराम के श्रम की सराहना करनी होगी क्योंकि उन्होंने हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी तथा बंगला भाषा के समाचार-पत्रों में आए दयानन्द विषयक सन्दर्भों को एकत्रित किया। उन्होंने यथासम्भव सन्दर्भित पत्र के प्रकाशन के वर्ष, संख्या, सन्-संवत-मास यहां तक कि पृष्ठों तक का उल्लेख किया है।

२. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को अंग्रेजी जानने की अतिरिक्त सुविधा प्राप्त थी। इसलिए उन्होंने मुख्यतः बंगाल में प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी पत्रों की सन्दर्भ-सामग्री को एकत्रित किया।

३. इन महानुभाव का नाम अलग-अलग प्रकार से उल्लिखित हुआ है।
घासीराम सम्पादित जीवनी में इन्हें W. Thaine कहा गया है जबकि फर्रूख़ाबाद के इतिहास में इन्हें W. Thaira कहा गया है। हमारे विचार से इनका नाम W. Thairs था क्योंकि यही नाम सर्वाधिक प्राचीन जीवन-चरित दयानन्द दिग्वजयार्क (खण्ड २, पृ. १००) में अंकित है।

४. मि. थेन (थेअर्स) का लिखित वक्तव्य इस प्रकार था-At the time in question, I decided in favour of Dayanand Saraswati, Fakir, and I believe his arguments are in accordance with the Vedas. I think he won that day. If you wish, I will give my reasons for my decision in a few days.

५. अमेठी के भूतपूर्व राजा रणञ्जयसिंह ने यहां एक प्रस्तर लेख लगवाया है जिसमें संस्कृत श्लोकों में शास्त्रार्थ का उल्लेख किया गया है। द्रष्टव्य-काशी शास्त्रार्थ, परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तथा इन पंक्तियों के लेखक द्वारा सम्पादित २०२६ वि. का संस्करण।

अध्याय ६

काशी शास्त्रार्थ और सम-सामयिक पत्र

१६ नवम्बर १८६६ मंगलवार के दिन दयानन्द सरस्वती ने काशी के पण्डितों से वाराणसी में दुर्गाकुण्ड के समीपस्थ आनन्द बाग में जो प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किया, वह उनके जीवन की एक प्रमुख घटना थी। उन्होंने मूर्तिपूजा की वैदिकता को सिद्ध करने के लिए काशी की विद्वन्मण्डली को चुनौती दी थी। कई दिनों की पशोपेश के बाद काशी के महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह द्वारा प्रोत्साहित एवं उत्तेजित किये जाने पर पण्डितगण दयानन्द के समक्ष आने के लिए तैयार हुए। इस शास्त्रार्थ में उपस्थित पण्डितों की संख्या तो बहुत अधिक थी किन्तु मुख्य प्रवक्ता के रूप में स्वामी विशुद्धानन्द[1] तथा महाराष्ट्रीय पण्डित बालशास्त्री[2] भाग ले रहे थे। शास्त्रार्थ में पण्डितगण अपने पक्ष की सिद्धि तो नहीं कर पाये, अलबत्ता धांधली करने में पीछे नहीं रहे। शास्त्रार्थ की मर्यादा को तिलाञ्जलि देते हुए स्वामी विशुद्धानन्द ने शाम का धुंधलका होते-होते स्वामी दयानन्द की पीठ को थपथपा कर उनके पराजय की घोषणा तो कर दी किन्तु स्वपक्ष का समर्थन वे तथा उनके सहयोगी नहीं कर सके। कालान्तर में स्वामी दयानन्द ने शास्त्रार्थ का विवरण सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित करा दिया।[3]

काशी शास्त्रार्थ की चर्चा सम-सामयिक पत्रों ने विस्तारपूर्वक की है। इन पत्रों ने शास्त्रार्थ के परिणाम पर भी अपनी-अपनी राय ज़ाहिर की। ब्रह्मसमाज के मुखपत्र **'तत्त्वबोधिनी पत्रिका'** ने ज्येष्ठ शकाब्द १७९२ के अंक में काशी शास्त्रार्थ के पुस्तकाकार प्रकाशित विवरण **शास्त्रार्थ व सत्यधर्म विचार** की समालोचना छापी। इसमें समीक्षा लेखक ने यह स्वीकार किया कि काशी के विद्वान् स्वामी दयानन्द को परास्त नहीं कर सके और न मूर्तिपूजा को वैदिक सिद्ध कर सके। इसी पत्रिका के आश्विन १७९२ शकाब्द के अंक

में पुनः लिखा गया कि काशी में कोई पण्डित प्रतिमा पूजन का अस्तित्व वेदों में नहीं दिखा सका।

मेरठ से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र **सहीफ-ए-आलम** ने २ दिसम्बर १८६९ के अंक के अन्तिम पृष्ठ पर इस बात के लिए दुःख प्रकट किया कि बनारस वालों ने शास्त्रार्थ होते-होते ताली बजा कर सभा में अव्यवस्था फैला दी तथा कोलाहल मचाया। रोहेलखण्ड समाचार (नवम्बर १८६९) ने शास्त्रार्थ में स्वामीजी की विजय घोषित की तथा इस पर खेद व्यक्त किया कि वहां पण्डितों ने झूठ-मूठ अपनी विजय की घोषणा कर दी।

लाहौर से प्रकाशित होने वाली **ज्ञानप्रदायिनी** पत्रिका (पंजाब के ब्रह्मसमाज का मुखपत्र) ने शास्त्रार्थ के छः महीने बाद अप्रैल १८७० के अंक में यह तो माना कि काशी शास्त्रार्थ के पं. सत्यव्रत सामश्रमी सम्पादित **प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका** में प्रकाशित विवरण तथा स्वयं स्वामी दयानन्द द्वारा पुस्तक रूप में प्रकाशित विवरण में अन्तर है किन्तु यह निश्चित है कि पण्डित लोग वेदों में प्रतिमा पूजन का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सके। इसके साथ ही 'पत्रिका' के सम्पादक ब्राह्म नेता नवीनचन्द्र राय अपनी यह धारणा प्रकट करते हैं कि वेदों के ऋषि इन्द्र, अग्नि आदि भौतिक देवताओं को ही परमात्मा मान कर पूजते थे। वे दयानन्द के वेदों को निर्भ्रान्त मानने के विचार से भी अपनी असहमति प्रकट करते हैं। **ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका** ने अपने इसी अंक में मुगलसराय के एक व्यक्ति का सम्पादक के नाम लिखा पत्र छापा जिसमें काशी-शास्त्रार्थ के उल्लेख के साथ-साथ स्वामीजी द्वारा वेदपाठशाला स्थापित करने की योजना तथा अद्वैतमत के खण्डन में एक पुस्तक लिखने के विचार की चर्चा है।

पं. सत्यव्रत सामश्रमी तो शास्त्रार्थ में उपस्थित थे और उन्होंने इस शास्त्रार्थ चर्चा को अपनी नोट बुक में अंकित कर लिया था। वे जिस **प्रत्नकम्रनन्दिनी** नामक संस्कृत पत्रिका (इसका अंग्रेजी नाम The Hindu-Commentator था) का सम्पादन करते थे, उसके दिसम्बर १८६९ के अंक में उन्होंने काशी शास्त्रार्थ का इतिवृत्त प्रकाशित किया था। एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा लिखित टिप्पणियों पर आधारित होने के कारण इसमें स्वामी दयानन्द और प्रतिद्वन्द्वी पण्डितों के कथनों को संवाद शैली में दिया गया है। तथापि लेखक

का पूर्वाग्रह भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। सामश्रमीजी ने अपने इस विवरण के अन्त में कुछ पण्डितों का यह मत उल्लिखित किया कि काशी का यह शास्त्र विचार सम्यक् (न्यायपूर्ण) नहीं हुआ किन्तु काशी के ये पण्डित इस बात से सहमत थे कि स्वामी दयानन्द पराजित अवश्य हुए।[५]

काशी का यह शास्त्रार्थ उस समय उच्चपठित वर्ग में सार्वजनिक चर्चा का विषय बना था। इसका एक प्रमाण यह भी है कि कतिपय अंग्रेजी पत्रों ने इसकी विस्तृत चर्चा की थी। **हिन्दू पैट्रियट** ने १७ जनवरी १८७० के अंक में अपने संवाददाता द्वारा प्रेषित इस शास्त्रार्थ के समाचार को विस्तार से उद्धृत किया तथा यह मत व्यक्त किया कि इस विवाद में पण्डितों की निश्चय ही पराजय हुई। शास्त्रार्थ की समाप्ति पर यह संवाददाता स्वामीजी से मिलने के लिए जब आनन्द बाग गया तो उसने उन्हें ऋषियों की सी आकृति-प्रकृति वाला, हँसमुख तथा बालसुलभ सरलता से युक्त पाया। इस भेंट का विस्तृत विवरण इस संवाददाता ने **हिन्दू पैट्रियट** के १४ फरवरी १८७० के अंक में छपाया। इसमें स्वामीजी द्वारा काशी में संस्कृत पाठशाला की स्थापना के विचार को भी उल्लिखित किया तथा आशा प्रकट की गई कि धनाढ्य लोग इस कार्य में उनकी सहायता करेंगे। संवाददाता ने इस टिप्पणी के प्रारम्भ में लिखा कि **पैट्रियट** के १७ जनवरी १८७० के अंक में प्रकाशित शास्त्रार्थ के विवरण को उसने आनन्द बाग में ठहरे स्वामीजी को पढ़कर सुनाया था। इस पर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की और आपके प्रति (सम्पादक के प्रति) अपना आभार जताया। संवाददाता के समक्ष काशी में वेद विद्यालय की स्थापना की अपनी योजना को बताते हुए स्वामीजी ने कहा कि वे स्वयं गुजराती हैं किन्तु उन्होंने मथुरा में दिवंगत सूरदास स्वामी (स्वामी विरजानन्द) के विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है। स्वामीजी ने यह भी कहा था कि यदि काशी में विद्यालय के प्रस्ताव ने शीघ्र ही मूर्त रूप धारण किया तो वे इसे सुदृढ़ करने के लिए कलकत्ता जाएंगे। कलकत्ता उस समय भारत की राजधानी थी।

हिन्दू पैट्रियट ने अपने इसी अंक में 'धर्म सभा' से भी संस्कृत विद्या के उत्थान में आगे आने तथा पाठशाला स्थापित करने में दयानन्द सरस्वती का सहयोग करने का आह्वान किया। सम्पादक ने अपनी टिप्पणी में लिखा, "जहाँ तक पाठशाला के लिए आर्थिक सहायता का प्रश्न है, कोई एक देसी

राजा इस भार को उठा सकता है। हमारी धर्मसभा से अपील है कि वह इस नये सुधारक (दयानन्द) के इस प्रशंसनीय प्रस्ताव का समर्थन करे। ब्रह्मसमाज भी इस कार्य में स्वामी दयानन्द का सहयोग कर सकता है क्योंकि उसके संस्थापक राजा राममोहन राय ने वैदिक उपासना पद्धति का उद्धार किया था।"

इलाहाबाद से **'पायोनियर'** नामक एक अंग्रेजी दैनिक निकलता था। २२ नवम्बर १८६६ के इस पत्र के अंक में स्वामीजी के विरोधी लोगों ने छपा दिया कि पं. माधवाचार्य एवं पं. वामनाचार्य ने दयानन्द को दबा दिया और उन्हें अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी। यह निरा असत्य था क्योंकि दो दिन पूर्व ही **'पायोनियर'** के २० नवम्बर के अंक में ए.एम.के. के नाम से जिस व्यक्ति ने शास्त्रार्थ का समाचार छपाया उसने पण्डितों द्वारा की गई धांधली का स्पष्ट वर्णन किया और कहा कि स्वयं काशी नरेश की उपस्थिति में संन्यासी (दयानन्द) के साथ जो व्यवहार किया गया, वह कदापि शोभनीय नहीं था।

काशी शास्त्रार्थ का अत्यन्त विस्तार से विवरण एक ईसाई पत्र **'क्रिश्चियन-इन्टैलिजेंसर'** ने मार्च १८७० के अंक में उद्धृत किया। यह विवरण एक जर्मन प्राच्य विद्याविद् रूडोल्फ हॉर्नले[६] द्वारा लिपिबद्ध किया गया था। हॉर्नले स्वयं काशी शास्त्रार्थ में उपस्थित थे और उन्होंने वहां हुए शास्त्रार्थ तथा स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व एवं विचारों को पर्याप्त विस्तार में जाकर उक्त पत्र के लिए लिखा था। **'क्रिश्चियन इन्टैलिजेंसर'** कलकत्ता के टामस स्मिथ सिटी प्रेस से प्रकाशित होता था और यह विवरण उस पत्र के मार्च १८७० के अंक में छपा था। हॉर्नले ने अपने लेख के आरम्भ में स्वामीजी की शरीर रचना तथा उनके बाह्य आकार-प्रकार का तथ्यात्मक विवरण दिया है। वह उन्हें **'एक सुधारक'** के विशेषण से सम्बोधित करता है तथा वैदिक युग को पुनः धरती पर लाने के स्वप्न का द्रष्टा कहता है। नवम्बर १८६६ में ही हॉर्नले ने स्वामीजी से काशी में मुलाकात की थी तथा उनके विचार जाने थे। लेखक की दृष्टि में स्वामीजी के सामने तीन समस्याएं प्रमुख हैं-(१) मूर्तिपूजा की निरर्थकता को बताना (२) पुराणों में विवेचित अवतारवाद का खण्डन कैसे किया जाए? (३) जन्मगत जातिभद का निराकरण कैसे हो?

क्रिश्चियन इण्टैलिजेंसर के दयानन्द विषयक उक्त सन्दर्भ को सर्वप्रथम पं. दुर्गाप्रसाद ने अपनी पुस्तक Triumph of Truth में उद्धृत किया। जब देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने प्रथम **'दयानन्द चरित'** की रचना की तो उन्होंने हॉर्नले के इस सन्दर्भ को Triumph of Truth से ही उद्धृत किया था। इसी अंक में हॉर्नले ने यह भी लिखा था कि "काशी आने के पहले जब स्वामी दयानन्द फर्रूख़ाबाद में थे, मूर्तिपूजा विषयक उनके तीव्र विचारों से प्रभावित होकर अनेक सत्यानुरागी ब्राह्मणों ने अपनी मूर्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया था।"-दयानन्द चरित, पृ. १०१। मार्च १८७० के **क्रिश्चियन इण्टैलिजेंसर** में आए इस उद्धरण को पहले Triumph of Truth (पृ. ३१) ने उद्धृत किया था।

काशी शास्त्रार्थ के लगभग ११ वर्ष बाद पूर्व उल्लिखित **'पायोनियर'** पत्र में इस प्रसंग का एकपक्षी विवरण प्रकाशित हुआ। ८ जनवरी १८८० के इस विवरण के अन्त में लिखा गया कि स्वामीजी प्रतिपक्षी पण्डितों के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके। पराजय की वेदना ने उनका मस्तक नत कर दिया और काशी के पण्डितगण अपनी विजय का हर्ष मनाने लगे। शास्त्रार्थ के इस एकांगी विवरण का प्रतिवाद **'पायोनियर'** के अगले ही अंक (१५ जनवरी १८८०) में किसी व्यक्ति ने प्रकाशित कराया। इसमें शास्त्रार्थ का शब्दशः वर्णन न देकर लेखक ने इस बात पर बल दिया कि स्वामीजी के प्रतिपक्षी पण्डित मूर्तिपूजा के समर्थन में एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके। फलतः यह शास्त्रीय विवाद एक तमाशा बन कर रह गया। कारण कि मूर्तिपूजा के मूल प्रश्न से हटकर काशी के पण्डित व्याकरण, न्याय तथा धर्मशास्त्र की उलझनों में फँस गये।

निश्चय ही काशी का शास्त्रार्थ स्वामी दयानन्द के जीवन में एक नया मोड़ लाने वाली घटना थी। उन्हें आशा थी कि शायद काशी के विद्वान् उनके धर्मप्रचार के कार्य में सहायक होंगे किन्तु उन्होंने देखा कि यह पण्डित-समाज अपने धार्मिक पूर्वाग्रहों को छोड़ने के लिए कतई तैयार नहीं हैं। फलतः उन्होंने धार्मिक संशोधन के इस कार्य को अकेले ही करने का निश्चय किया।

इस बार का स्वामी दयानन्द का काशी निवास २२ अक्टूबर १८७६ से लेकर २६ जनवरी १८७० तक रहा, क्योंकि **'हिन्दू पैट्रियट'** (फरवरी

१८७०) में हम पढ़ते हैं कि स्वामीजी काशी से इलाहाबाद की ओर प्रस्थान कर गये हैं। पहले वे मिर्जापुर गये और उसके बाद प्रयाग (इलाहाबाद) आए।

पाद टिप्पणियां

१. स्वामी विशुद्धानन्द के विस्तृत परिचय के लिए लेखक की पुस्तक "महर्षि दयानन्द के भक्त प्रशंसक और सत्संगी' देखें।

२. पूरा नाम पं. बालशास्त्री रानडे (१८३९-१८८०) मूलतः महाराष्ट्र निवासी चित्तपावन ब्राह्मण थे। राजकीय संस्कृत कालेज बनारस में अध्याक रहे।

३. यह पुस्तक 'अथ शास्त्रार्थ और सद्धर्म विचार' शीर्षक से छपी थी।

४. पं. सत्यव्रत सामश्रमी बंगाली थे। पर्याप्त समय तक ये काशी में रहे। विस्तृत परिचय के लिए उपर्युक्त पाद टिप्पणी संख्या १ में संकेतित ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

५. काशी शास्त्रार्थ का पक्षपातपूर्ण विवरण मथुराप्रसाद दीक्षित ने 'काशी के विद्वानों और दयानन्दजी का सच्चा शास्त्रार्थ' शीर्षक से पुस्तक रूप में छपाया था। इसकी समुचित आलोचना इन पंक्तियों के लेखक के द्वारा सम्पादित दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह में देखें।

६. रूडोल्फ हॉर्नले (१८४१-१९१८) जर्मनी का प्राच्य विद्याविद् विद्वान् था। इसका जन्म आगरा में हुआ था, जहां उसके पिता मिश्नरी थे। विस्तृत परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक 'जर्मनी के संस्कृत विद्वान्' देखें। डी.ए.वी. प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित २००० ई.

अध्याय ७

स्वामी दयानन्द - भारत की तत्कालीन राजधानी (कलकत्ता) में

स्वामी दयानन्द को देश की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता में आने की प्रेरणा देने वाले बैरिस्टर चन्द्रशेखर सेन ब्रह्मसमाज के सभासद थे। उन्होंने ही राजधानी में स्वामीजी के निवास की व्यवस्था राजा ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर (Tagore) के प्रमोद कानन (नाईनान) नामक उद्यान में की थी। कलकत्ता से उस समय बंगला, हिन्दी एवं अंग्रेजी के अनेक पत्र निकलते थे। स्वामीजी का कलकत्ता में निवास साढ़े तीन मास का रहा। अतः उनके व्याख्यानों और कार्यक्रमों को इन पत्रों में पर्याप्त विज्ञप्ति मिली। साथ ही पत्र सम्पादकों ने स्वामी दयानन्द के चिन्तन एवं विचारों पर स्वतंत्रतापूर्वक स्वमत को अभिव्यक्त किया।

अंग्रेजी पत्र **'इण्डियन मिरर'** ने ३० दिसम्बर १८७२ के अंक में स्वामीजी को 'एक प्रबल मूर्ति भंजक हिन्दू' (Iconoclast) बताया तथा उन्हें काशी में बड़े-बड़े पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित करने वाला घोषित किया। १२ जनवरी १८७३ के इसी पत्र के अंक में स्वामीजी के ऐशियाटिक लाइब्रेरी एवं म्यूजियम जाने का समाचार छपा, जहां से उन्होंने कुछ शास्त्र ग्रन्थ खरीदे थे। इसी पत्र में ब्राह्म नेता केशवचन्द्र सेन' के घर जाकर स्वामीजी के कतिपय ब्राह्म नेताओं से विचार-विमर्श करने का समाचार भी दिया गया था। २२ फरवरी १८७३ के **'इण्डियन मिरर'** में २३ फरवरी १८७३ को स्वामीजी के गोरा चांद (गौरचन्द्र) दत्त के निवास पर व्याख्यान देने की सूचना छपी। निश्चित दिन यह व्याख्यान वेद में मूर्तिपूजा नहीं है, विषय पर हुआ। कलकत्ता के संस्कृत कालेज के कार्यकारी प्राचार्य महेशचन्द्र न्यायरत्न भी इस व्याख्यान के एक श्रोता थे। (इण्डियन मिरर, २५ मार्च १८७३)

१५ मार्च १८७३ के **इण्डियन मिरर** ने वराहनगर के नाइट स्कूल में दिये गये स्वामीजी के भाषण का विस्तृत विवरण प्रकाशित किया। व्याख्यान-सभा में स्वामीजी के रेशमी वस्त्र धारण करने का उल्लेख भी इस पत्र में था। यह व्याख्यान शुद्ध, सरल तथा सुन्दर संस्कृत में[२] तीन घण्टे से अधिक समय तक होता रहा। पत्र के संवाददाता की दृष्टि में स्वामीजी की युक्तियां प्रबल और प्रभावी तथा वर्णन शैली निर्भीक एवं वीरतापूर्ण थी।

कलकत्ता के सुधी समाज के सम्मुख स्वामी दयानन्द ने वेद विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव रखा था। कलकत्ता में संस्कृत कालेज तो पर्याप्त समय से चल रहा था किन्तु उसमें वेदाध्ययन के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। **इण्डियन-मिरर** के सम्पादक ने ६ मार्च १८७३ के अंक में स्वीकार किया कि स्वामीजी के वेद विद्यालय की स्थापना के सुझाव को, लगता है कि बहुत अधिक सार्वजनिक समर्थन नहीं मिला है। बिना वेदों का अध्ययन कराये स्वामीजी मात्र संस्कृत पढ़ाने को निरर्थक मानते थे।

कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले बंगला पत्र **पताका** ने स्वामीजी के कलकत्ता आगमन पर सम्पादकीय लेख लिखा। इस पत्र के सम्पादक के अनुसार स्वामीजी के राजधानी में आने पर बड़ा आन्दोलन (हलचल) उपस्थित हो गया था। क्या बच्चा, क्या बूढ़ा और क्या नारी, सभी उनके दर्शनों एवं विचार श्रवण के लिए लालायित थे। केशवचन्द्र सेन के यहां उनके संस्कृत व्याख्यान को सुनकर इस पत्र के सम्पादक ज्ञानेन्द्रलाल राय ने लिखा, **"संस्कृत भाषा में ऐसी सरल और मधुर वक्तृता अब तक हमने किसी के मुख से नहीं सुनी थी। स्वामीजी इतनी सरल संस्कृत बोलते थे कि इस भाषा से अनभिज्ञ व्यक्ति भी उसे समझ लेता था।"** सम्पादक की एक अन्य बात बड़ी मार्मिक थी। उसके अनुसार **किसी संन्यासी के मुख से धर्म और समाज के बारे में इतने उदार विचार सुनने का यह हमारा पहला अवसर था।**[३]

किसी कारण से बंगला के **दैनिक सोमप्रकाश** ने २ मार्च १८७३ के अंक में स्वामीजी के बारे में लिखा कि "शंकराचार्य के तुल्य स्वामी दयानन्द भी किसी दर्शन का प्रचार करने का उद्देश्य रखते हैं या नहीं, यह तो हमें मालूम नहीं, किन्तु ऐसा लगता है कि वे अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन कर प्रसिद्धि प्राप्त

करना अवश्य चाहते हैं।" निश्चय ही यह टिप्पणी सदाशयता से नहीं लिखी गई थी। इसमें व्यंग्य की कटुता थी। स्वामीजी के भक्तों ने जब इस आक्षेप का प्रतिवाद इसी पत्र में भेजा तो सम्पादक ने उसे नहीं छापा। अन्ततः उसे ढाका से प्रकाशित होने वाली पत्रिका **'हिन्दू हितैषी'** ने प्रकाशित किया।

ब्रह्मसमाज की मुख पत्रिका **'तत्त्वबोधिनी पत्रिका'** ने स्वामी दयानन्द के कलकत्ता निवास का समग्र आकलन करते हुए लिखा, "प्रसिद्ध दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आए हैं। हिन्दू शास्त्र पर उनका पूर्ण अधिकार है। **वे न मूर्तिपूजक हैं और न अद्वैतवादी**। वे जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्वीकार करते हैं। एक अद्वितीय, निराकार, ईश्वर के उपासक हैं। वे बाल-विवाह तथा प्रचलित जातिभेद के विरुद्ध हैं। संस्कृत उनकी मातृभाषा हो गई है। **वे श्रुतिमधुर संस्कृत में वार्तालाप करते हैं।**"

'धर्मतत्त्व' नामक प्रसिद्ध बंगला पत्र ने १ चैत्र १७६४ शकाब्द के अपने अंक में स्वामीजी के व्यक्तित्व, चरित्र और विचारों पर विस्तारपूर्वक लिखा। सारांश में, इस पत्र का कहना था कि स्वामी दयानन्द दिग्गज पण्डित तथा हिन्दू शास्त्र विशारद है। संस्कृत भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है तथा वे प्रांजल, सरल एवं श्रुतिमधुर संस्कृत में भाषण देते हैं। वे एक ईश्वर की उपासना के समर्थक तथा मूर्तिपूजा के विरोधी हैं। स्वामीजी गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। वे स्त्री शिक्षा के समर्थक हैं तथा उन्हें मातृभाषा, धर्मशास्त्र, शिल्प, संगीत, वैद्यक आदि सिखाने का समर्थन करते हैं। स्वामीजी ने कलकत्ता में वेद विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव केशवचन्द्र सेन तथा अन्य प्रबुद्ध बंगालियों के समक्ष रखा है। वे इस कार्य में वायसराय और गवर्नर जनरल लार्ड नार्थब्रुक की सहायता लेने के भी इच्छुक हैं। स्वामीजी में विनोद करने की असाधारण क्षमता है। वे अपने कथन को तर्क एवं दृष्टान्तों से पुष्ट करते हैं।

स्वामीजी अद्वैतवाद के समर्थक नहीं हैं और न सायणाचार्य कृत वेदभाष्य को मान्यता देते हैं। वे वेदों में बहुदेववाद को नहीं मानते और 'इन्द्र' आदि शब्दों के धात्वर्थ को महत्त्व देते हैं। पुराणादि नवीन ग्रन्थ उन्हें अग्राह्य हैं। व्याख्यान देने के अतिरिक्त वे प्रातः सायं दीर्घकाल तक ईश्वरोपासना में लगे रहते हैं। वेद की अभ्रान्तता, पुनर्जन्म आदि सिद्धान्तों में उनका अटूट

विश्वास है। लेख के अन्त में पत्र ने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि निकट भविष्य में दयानन्द सरस्वती के मत को सर्वत्र प्रचार मिलेगा और उनके द्वारा हिन्दू समाज पुनरुज्जीवित होगा।

ब्राह्म नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर[४] से स्वामीजी का सौहार्द भाव था। ब्रह्मसमाज के उत्सव तथा नियमित उपासना के कार्यक्रम ठाकुर महाशय के जोड़ासांको मोहल्ले की ठाकुरबाड़ी में होते थे। स्वामी दयानन्द के कलकत्ता निवास की अवधि में ब्रह्मसमाज का वार्षिकोत्सव सम्पन्न हुआ। यह **माघोत्सव** के रूप में आयोजित किया जाता था। इस अवसर पर देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामीजी को अपने निवास स्थान (ठाकुरबाड़ी जोड़ासांको) में आमंत्रित किया। इस प्रसंग का उल्लेख **तत्त्वबोधिनी पत्रिका** ने इस प्रकार किया–२१ जनवरी १८७३ तदनुसार माघ कृष्णा अष्टमी सं. १६२६ वि. को महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के भवन में बहुत से मनुष्यों के साथ परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती से दोपहर से सायंकाल तक धर्मालोचना (धर्मचर्चा) हुई। सब मनुष्यों को उनके विचार सुनकर बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। (फाल्गुन १७६४ शकाब्द) बहुत वर्ष बाद महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर के छात्रों के समक्ष दी गई अपनी एक वक्तृता में कलकत्ता में स्वामी दयानन्द के माघोत्सव के अवसर पर ठाकुरबाड़ी में आने तथा वहां उपस्थित लोगों से धर्मचर्चा करने का वृत्तान्त प्रस्तुत करने का उल्लेख किया था।[५]

तत्त्वबोधिनी पत्रिका ने स्वामीजी के कलकत्ता आगमन तथा निवास का समग्र आकलन करते हुए लिखा, "दयानन्द सरस्वती अपने विद्या प्रभाव से कलकत्ता निवासियों को आश्चर्यान्वित कर गये हैं।"

यद्यपि स्वामी दयानन्द को दूसरी बार कलकत्ता जाने का अवसर नहीं मिला, किन्तु आठ वर्ष पश्चात् पौराणिक पण्डितों की एक सभा का आयोजन कलकत्ता में किया गया जिसका प्रयोजन स्वामी दयानन्द के वेद प्रतिपादित सिद्धान्तों का खण्डन करना था। सभा के आयोजकों को इसमें स्वल्प सफलता भी नहीं मिली। किन्तु देशवासियों को ज्ञात हो गया कि स्वामी दयानन्द की धर्म और स्वदेश के प्रति भावनाओं को पुराणपन्थी पण्डित नहीं समझ सके हैं।

आर्य सन्मार्ग सन्दर्शनी सभा कलकत्ता : तत्कालीन पत्रों में

स्वामी दयानन्द द्वारा किये गये पौराण मत खण्डन से व्यथित तथाकथित सनातनी पण्डित तो चिढ़े हुए थे ही, उन सेठ-साहूकारों में भी भारी असन्तोष था जो अपनी भ्रामक एवं हानिकारक परम्परागत मान्यताओं को तिलाञ्जलि देने में कठिनाई अनुभव करते थे। किन्तु स्वामी दयानन्द तो पदे-पदे पौराणिक मत के प्रतिष्ठाताओं को शास्त्रार्थ समर में उतरने के लिए आहूत करने तथा उन्हें अपनी मान्यताओं की पुष्टि में वैदिक प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण देने का आग्रह करते। इस बीच स्वामीजी को वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों के प्रचार में असाधारण सफलता मिली और गुजरात से बंगाल तक तथा पंजाब से महाराष्ट्र तक के लोग आर्यसमाज से न केवल परिचित हुए अपितु उन्होंने सनातन वैदिक धर्म, आर्य संस्कृति तथा आर्यावर्त के पुनरुत्थान में उसके योगदान को स्वीकार किया, उसकी सराहना की।

अन्ततः सनातनधर्मियों ने सोचा कि शास्त्रार्थ के मंच पर प्रत्यक्ष आकर दयानन्द से जूंझना कठिन है, अतः कोई अन्य उपाय करना चाहिए। क्यों नहीं, एक बृहद् पण्डित सभा आहूत की जाए और उसमें सैंकड़ों पण्डितों के सामने दयानन्द के पक्ष को विवादग्रस्त बताया जाए तथा सिद्धान्त पक्ष के रूप में सनातन पौराणिक मत की विजय घोषित कर दी जाए। मथुरा के एक सेठ नारायणदास ने इस सभा का आर्थिक भार खुद लिया और २२ जनवरी १८८१ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सेनेट हाल में यह विद्वत् सभा आहूत की गई। संस्कृत कालेज कलकत्ता के प्राचार्य महेशचन्द्र न्यायरत्न ने सभा के प्रबंध में विशेष रुचि ली तथा बंगदेशीय पण्डितों के अलावा कतिपय अन्य प्रान्तस्थ संस्कृत विद्वानों ने भी इसमें भाग लिया। उपस्थित विद्वानों में उल्लेखनीय नाम हैं-तारानाथ तर्क वाचस्पति, जीवानन्द विद्यासागर (कलकत्ता), भुवनचन्द्र तर्करत्न (नवद्वीप), पं. रामधन (जैस्सोर), बांकेबिहारी वाजपेयी तथा जगना नारायण तिवारी (कानपुर) तथा सुदर्शनाचार्य (वृन्दावन)। पौराणिकों के पक्ष को मद्रास प्रान्त से आए पं. रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने प्रस्तुत किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा राजा राजेन्द्रलाल मित्र (भारत विद्याविद्) सभा में उपस्थित नहीं थे, किन्तु उन्होंने इसकी कार्यवाही का अनुमोदन किया। इस

सभा में कलकत्ता के रईस तथा वहां आकर व्यापार-व्यवसाय में लगे अन्य प्रान्तस्थ सेठ-साहूकार भी उपस्थित थे।

आर्य सन्मार्गसंदर्शिनी सभा में उपस्थित विद्वानों के विचारार्थ निम्नलिखित प्रश्न प्रस्तुत किये गये। इन प्रश्नों को पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न ने टिप्पणी के साथ रखा-

१. क्या ब्राह्मण भाग को भी संहिता भाग की भांति मान्य करना चाहिए[६] और क्या मनु के तुल्य[७] अन्य स्मृतियां भी मान्य हैं या नहीं।
२. विष्णु आदि पंचदेवों की पूजा, मृतक पितरों का श्राद्ध तथा गंगादि तीर्थों की यात्रा को शास्त्र सम्मत मानना चाहिए या नहीं।
३. वेद मंत्रों में प्रयुक्त 'अग्नि' जैसे शब्दों का अर्थ परमात्मा करना चाहिए या सामान्य आग?[८]
४. यज्ञ का प्रयोजन जल, वायु आदि की शुद्धि है या स्वर्गप्राप्ति? क्या यज्ञों से अदृष्टरूपी स्वर्ग नहीं मिलता?[९]

इन प्रश्नों का उत्तर रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने पौराणिकों की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार दिया और कहा कि (१) वेद संहिताओं की भांति ब्राह्मण भाग भी वेद हैं तथा (२) मनु के समान अन्य स्मृतियों को भी प्रामाणिक मानना उचित है (३) पञ्च देवोपासना, मृतक श्राद्ध विधान तथा गंगादि तीर्थों में स्नान से मुक्ति मानना सर्वथा उचित है। (४) वेदों में प्रयुक्त 'अग्नि' शब्द ईश्वर का वाचक न होकर यज्ञ में प्रयुक्त भौतिक आग का ही वाचक है। अग्नि का परमात्मा अर्थ करना दयानन्द की कपोल कल्पना है।

सभा की समाप्ति की घोषणा के पहले निर्णीत उत्तरों पर उपस्थित विद्वानों के हस्ताक्षर लिये गये तथा उन्हें भूयसी दक्षिणा से सम्मानित किया गया। इस प्रकार शास्त्रार्थ का यह नाटक समाप्त हुआ। आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का वृत्तान्त जिन पत्रों में आयोजकों के विचारानुकूल प्रकाशित हुआ उनमें निम्न थे-कलकत्ता का **सार सुधानिधि** (२४ व ३१ जनवरी १८८१) अंग्रेजी पत्र **हिन्दू पैट्रिएट** (जनवरी १८८१), **इण्डियन डेली न्यूज** (२५ जनवरी १८८१) **इंग्लिश मैन** (२६ जनवरी १८८१), **बिहार बन्धु** (२७ जनवरी १८८१), **दिल्ली गज़ट** (१६ फरवरी १८८१) तथा **आर्यदर्पण** (खण्ड ३, पृ. २५३-२६६)

हिन्दी के प्रसिद्ध दैनिक **भारतमित्र** ने **हिन्दू पैट्रिएट** से सभा का विवरण लेकर अपने २७ जनवरी के अंक में साभार उद्धृत किया।

यह तो निश्चित है कि व्यक्ति की भांति पत्र-पत्रिकाओं के अपने-अपने विचार तथा पूर्वाग्रह होते हैं। कलकत्ते का पत्र **सारसुधानिधि** पौराणिक मत का प्रवक्ता था। १६ माघ १६३७ वि. के अंक में **सारसुधानिधि** ने स्वामी दयानन्द पर अनेक प्रकार के आरोप लगाये तथा उनको सनातन हिन्दू धर्म का अनिष्ट कर्त्ता बताया। ये आक्षेप उक्त सन्दर्शिनी सभा के प्रसंग में लगाये गये थे। **भारतमित्र** (१० फरवरी १८८०) में गुरदासपुर के भानुदत्त तत्त्वजिज्ञासु का एक विस्तृत पत्र छपा। इसमें पत्र लेखक ने आर्य सन्दर्शिनी सभा के आयोजकों से सवाल किया कि कलकत्ता में इतनी बड़ी सभा बुलाने और मनमाने निर्णय करने की अपेक्षा क्या यह अच्छा नहीं होता कि वे दयानन्द सरस्वती से प्रत्यक्ष शास्त्रार्थ कर कोई निर्णय करते। उसने व्यंग्य में लिखा-**"सरस्वतीजी के सम्मुख आकर शास्त्रार्थ कोई नहीं करता। अपने-अपने घरों में जो चाहें धुपद (राग विशेष) गाते हैं।"**

आगरा के पत्र **भारती विलास** के १५ फरवरी १८८१ के अंक में एक व्यंग्य लेखक ने 'लोटपोट' शुभचिन्तक नाम से 'अपूर्व सभा' शीर्षक लेख छपाया। हास्य और व्यंग्य की शैली में अपने प्रतिद्वन्द्वी पर कटाक्ष करना तथा स्वपक्ष की स्थापना करना उस युग के लेखन की एक प्रमुख शैली थी। इसी शैली को अपनाकर इस वृत्तान्त के लेखक ने आर्य सन्दर्शिनी सभा में उठाये गये सभी मुद्दों पर सनातनी दृष्टिकोण को अपने कटाक्ष का विषय बनाया। लेखक ने विदग्धता पूर्वक लिखा कि आज की दुनिया में रुपया ही सब कुछ है। नारायण स्वयं लक्ष्मी के अधीन हैं। इसलिए जब सभा के आयोजक सेठ नारायणदास ने उपस्थित विद्वानों को विदाई में प्रचुर धनराशि प्रदान की तो उनसे अपने पक्ष में व्यवस्था लेना कतई कठिन नहीं था।

पाद टिप्पणियां

१. केशवचन्द्र सेन के विस्तृत परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' देखें।

२. स्वामी दयानन्द की संस्कृत वक्तृता के सम्बन्ध में एक प्रत्यक्षदर्शी नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने लिखा था-"वह ऐसी सहज संस्कृत बोलते थे कि संस्कृत भाषा में

जो व्यक्ति महामूर्ख हो वह भी अनायास ही उनकी बात को समझ लेता था, और एक विषय में मुझे आश्चर्य हुआ। अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ एक हिन्दू संन्यासी के मुख से धर्म और समाज विषय में ऐसे उदार विचार मैंने पहले कभी नहीं सुने थे। 'दयानन्द चरित' पृ. २०८

३. यह सम्मति तथा पूर्वोद्धृत ज्ञानेन्द्रलाल राय की संस्कृत वक्तृता सम्बन्धी सम्मति लगभग एक सी है।

४. महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के परिचय के लिए उक्त पाद टिप्पणी संख्या १ में उल्लिखित पुस्तक द्रष्टव्य है।

५. द्रष्टव्य-डा. भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित-'मैंने ऋषि दयानन्द को देखा' में यह प्रसंग पृ. ४३

६. स्वामी दयानन्द मंत्र संहिता को ही वेद मानते थे न कि ऋषि याज्ञवल्क्यादि रचित ब्राह्मण ग्रन्थों को।

७. स्वामी दयानन्द की दृष्टि में केवल मनुस्मृति ही मान्य है। अन्य स्मृतियां अनार्ष और अप्रामाणिक हैं।

८. स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में 'अग्नि' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ परमात्मा भी किया है। द्रष्टव्य-ऋग्वेद (१/१/१) का भाष्य

९. स्वामी दयानन्द की दृष्टि में यज्ञ के आध्यात्मिक लाभ तो हैं ही, किन्तु वायु प्रदूषण को रोकना तथा वायु-मण्डल को स्वच्छ रखना आदि उसके प्रत्यक्ष लाभ भी हैं।

अध्याय ८

स्वामी दयानन्द बम्बई में

भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता में साढ़े चार मास व्यतीत करने के कुछ समय बाद स्वामी दयानन्द को बम्बई आने का निमंत्रण मिला। यहां पहुंचने के पहले वे चार दिन नासिक में रहे थे। यहां उन्होंने दो व्याख्यान दिये जिनकी चर्चा **'इन्दुप्रकाश'** ने विस्तारपूर्वक की। पत्र ने लिखा-"स्वामीजी में दुर्लभ मानसिक शक्तियां हैं और उनकी वाणी प्रभावोत्पादक है। वे अपने सुधार कार्य में स्वयं के संस्कृत ज्ञान तथा वेदों की सहायता लेते हैं। उनके धर्म सम्बन्धी विचार औचित्यपूर्ण तथा उदार हैं।" गोदावरी तट पर स्थित राम-मंदिर में दिये गये स्वामीजी के व्याख्यान का सन्दर्भ देकर पत्र लिखता है-"नदी के तट पर विचारमूढ ब्राह्मणों के समूह में पुरोहितों की बुराइयों और उनके अविद्याजन्य दोषों का स्वामीजी ने अत्यन्त निर्भीकता, दृढ़ता तथा स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया।" आगे पत्र ने लिखा-"जिस प्रचलित अर्थ में 'जाति' शब्द को ग्रहण किया जाता है उसे उस अर्थ में वे ग्रहण नहीं करते। उनके विचार में 'पर्याप्त ज्ञान सम्पन्न शूद्र ब्राह्मण है और एक पापकर्मी ब्राह्मण शूद्र है। मूर्तिपूजा के वे अदम्य शत्रु हैं। इतना ही कहना काफी है कि वे एक मंदिर से लौटे परन्तु उन्होंने मंदिर में स्थापित मूर्तियों के प्रति कोई आदर भाव प्रकट नहीं किया। वे विधवाओं के पुनर्विवाह के सच्चे और उत्साही समर्थक हैं। मैं इस पण्डित के मुख से यह सुनकर आश्चर्यान्वित हुआ कि अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने उस समय (द्वापर में) अमेरिका के राजा की भगिनी से विवाह किया था। गत हजार वर्षों में जो जातियां (मुसलमान और ईसाई) एक दूसरे के बाद भारत पर राज्य करने आईं हमने उनकी बुराइयों के अतिरिक्त उनकी अच्छाई की एक भी बात नहीं सीखी।" उन्होंने आगे कहा-"बिना विवाह के स्त्रियों को (रखैल बनाकर) रखने की प्रथा हमने मुसलमानों से सीख ली किन्तु जो बात सीखनी चाहिए, अर्थात् परमेश्वर की एकता, वह नहीं सीखी।"

"वे वर्तमान में भारत में फैल रहे अधिसंख्य भिखारियों के खिलाफ हैं। वे दूषित दान प्रथा के भी विरोधी हैं। उनकी इच्छा है कि सारे वैरागी, गोसांई, बाबाजी और भिक्षुओं को कृषक कर्म में लगाना चाहिए या उन्हें श्रमजीवी (मजदूर) बनाना चाहिए।" पण्डित दयानन्द की इस बात को सम्पादक ने आश्चर्यजनक माना जब उन्होंने कहा कि 'भारत में प्रकृत अर्थ में अंग्रेज ही ब्राह्मण हैं'। पण्डितजी हास्य रस में भी प्रवीण हैं। एक वैष्णव माथे पर काली रेखा का तिलक लगा कर आया तो उन्होंने तिलक धारण करने पर व्यंग्य करते हुए कहा, "यदि एक काली रेखा लगाने से वैष्णव को स्वर्ग सुगमतया मिल जाएगा तो यदि वह मुंह को काला कर ले तो शायद स्वर्ग की यात्रा और भी सुगम हो जाएगी।"

बम्बई भारत का दूसरे नम्बर का महानगर तो था ही, व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा, कला और संस्कृति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था। बम्बई के निवासी पं. जयकृष्ण जीवनराम व्यास ने स्वामीजी को काशी में वहां की पण्डित-मण्डली से शास्त्रार्थ करते हुए देखा था और वे उनकी तर्कपटुता तथा शास्त्रज्ञता से प्रभावित हुए थे। काशी में हुए इस शास्त्रार्थ का गुजराती सारांश बम्बई से प्रकाशित होने वाले **'आर्यमित्र'** में सेवकलाल कृष्णदास[1] ने प्रकाशित कराया था। इस प्रकार बम्बई निवासियों को स्वामी दयानन्द और उनके विचारों का परिचय मिला और इनमें से कुछ लोगों के आमंत्रण पर वे २० अक्टूबर १८७४ को बम्बई आए। यहां प्रारम्भ में उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित गुरु के प्रति अन्धभक्ति तथा उससे उत्पन्न पाखण्ड, अनाचार और व्यभिचार का प्रबल खण्डन किया। शीघ्र ही इस नगर में स्वामीजी के उपदेशों तथा शास्त्रार्थों की चर्चा देश में सर्वत्र फैल गई।

पंजाब के क्रान्तिकारी समाजसुधारक मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी ने अपने उर्दू पत्र **नीतिप्रकाश** में स्वामीजी के बम्बई में दिये गये उपदेशों की विस्तार से चर्चा की और श्रद्धा के अतिरेक में उन्हें सच्चिदानन्द का अवतार तक कहा। उन्होंने स्पष्ट भाषा में देशवासियों को कहा कि "स्वधर्म रक्षा के लिए' दयानन्द सरस्वती का कथन सुनो अन्यथा तुम्हारा मूल्य कौड़ी के तीन-तीन रह जाएगा।" बम्बई में स्वामीजी ने वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों को शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया। पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् निश्चय हुआ

कि १२ जून १८७५ को फ्रामजी कावसजी इंस्टीट्यूट में स्वामी दयानन्द और पं. कमलनयनाचार्य का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ होना चाहिए। बम्बई से प्रकाशित होने वाले गुजराती दैनिक **बम्बई समाचार** ने इस शास्त्र चर्चा का विस्तृत वृत्तान्त १७, १८ जून १८७५ के अंकों में प्रकाशित किया। शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि का विवरण देने के पश्चात् पत्र ने लिखा कि पं. कमलनयन ने मूर्तिपूजा के पक्ष में वैदिक प्रमाण प्रस्तुत करने की अपेक्षा टालमटोल का रास्ता अपनाया, कभी मध्यस्थ की नियुक्ति को लेकर तो कभी किसी अनावश्यक बात को तूल देकर। इस प्रकार समय का अतिक्रमण होता रहा। अन्त में स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा की अवैदिकता को विस्तारपूर्वक बताया, किन्तु उनकी वक्तृता के पहले ही आचार्य कमलनयन सभास्थल से चले गये।

बम्बई में प्रदत्त व्याख्यानों के प्रकाशित विवरण

२८ नवम्बर १८७४ को स्वामी दयानन्द ने फ्रामजी कावसजी हाल में जो व्याख्यान दिया, उसका वृत्तान्त गुजराती पत्र **'इन्दुप्रकाश'** ने ३० नवम्बर १८७४ को प्रकाशित किया। इसमें आर्य जाति की विगत उन्नति का वर्णन करने के पश्चात् बताया गया कि इस देश की अधोगति का आरम्भ महाभारत के बाद हुआ। **'गुजरात मित्र'** ने १६ दिसम्बर १८७५ के अंक में स्वामीजी के व्याख्यानों के बारे में समीक्षात्मक शैली में जो कुछ लिखा उसका अभिप्राय यह था कि स्वामी दयानन्द वेद के आधार पर सुधार की अपील करते हैं तथा वे स्वयं धर्म में व्याप्त पाखण्डों को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हैं। २५ नवम्बर १८७४ को फ्रामजी कावसजी हाल में दिये गये व्याख्यान का सारांश **'आर्यमित्र'** के २८ नवम्बर के अंक में छपा था।

मराठी पत्र **'सुबोध पत्रिका'** ने २१ दिसम्बर १८७५ के अंक में लिखा कि "स्वामीजी की तथ्यपूर्ण आलोचना को सुनकर इस नगर के वासी कुछ लोगों ने अपनी देव मूर्तियों को मुम्बादेवी के तालाब में फेंक दिया। सेवकलाल करसनदास (बाद में बम्बई आर्यसमाज के मंत्री, ने तो अपनी मूर्तियों को बम्बई के म्यूजियम में रखवा दिया है।)" स्वामी दयानन्द को बम्बई आमंत्रित करने वालों में जो लोग थे वे मुख्य रूप से अद्वैतवाद को मानने वाले थे। स्वामीजी को बुलाने में उनका एक अभिप्राय यह भी था कि यहां प्रचलित वल्लभ सम्प्रदाय का खण्डन वे स्वामीजी से करा सकेंगे और इस मत के दुर्बल

पड़ने पर अद्वैतवाद की विचारधारा का प्रचार सुगम हो जाएगा। किन्तु उनको अपना अभीष्ट पूरा होता दिखाई नहीं दिया। कारण कि स्वामीजी तो अद्वैतवाद को भी अवैदिक मानते थे तथा शांकर मत का खण्डन करते थे। अद्वैतवाद के प्रति स्वामीजी के इस विपरीत रुख को देखकर भाईशंकर नाना भाई ने कुछ पत्रों में उनकी आलोचना की। इस पर स्वामीजी का पक्ष लेकर गिरधरलाल दयालदास कोठारी ने **'बाम्बे गज़ट'** तथा **'टाइम्स आफ इण्डिया'** में लिखा तथा स्वामीजी के दार्शनिक सिद्धान्तों पर किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया।

ब्रिटिश साम्राज्य में बम्बई की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। इस नगर की गतिविधियों की चर्चा यूरोपीय देशों तक पहुँचती थी। जब स्वामीजी के यहाँ दिये गये व्याख्यानों के वृत्तान्त यूरोप में पहुंचे तो उन्हें जानकर जर्मनी के लिपजिग नगर में रहने वाले एक व्यक्ति ने कलकत्ता के **'नेशनल पत्र'** में एक टिप्पणी प्रकाशनार्थ भेजी। भेजने वाले ने स्वयं को **'लिपजिग का एक ब्राह्मण'** बताया तथा लिखा कि पं. दयानन्द जैसे व्यक्ति ही यूरोप के लोगों में यह विश्वास पैदा कर सकते हैं कि भारत भूमि बिना पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार किये किस प्रकार प्रचण्ड तार्किक बुद्धि तथा गम्भीर विद्वता वाले व्यक्ति पैदा कर सकती है।

वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराने के लिए वल्लभ मतानुयायी एक प्रज्ञाचक्षु विद्वान पं. गट्टूलाल[२] को तैयार किया। इस बात की सूचना बम्बई समाचार के २ दिसम्बर १८७४ के अंक में छपी। शास्त्रार्थ विषयक चर्चा तो चली परन्तु शास्त्रार्थ नहीं हुआ। पं. गट्टूलाल के पक्ष के लोगों ने एक सभा बुलाकर उसमें शास्त्रार्थ के निमित्त स्वामीजी को बुलाने का निश्चय किया। किन्तु उनका मूल उद्देश्य शास्त्रार्थ चाहे न हो, सभा में उपद्रव मचा कर स्वामीजी को अपमानित करने का था। इसकी भनक स्वामीजी को लग गई तो वे उस सभा में उपस्थित ही नहीं हुए। अब वैष्णवों ने अपनी ओर से एक सभा आयोजित की। एक भाटिया सेठ को इसका अध्यक्ष बनाया और वहां एक व्यक्ति ने उच्च स्वर से स्वामीजी को पुकारा और कहा कि दयानन्द सरस्वती कहां हैं? उन्हीं के लिए यह सभा आहूत की गई है। वस्तुतः यह सारी कार्रवाई एकांगी तथा पक्षपातपूर्ण थी। **'बाम्बे गज़ट'** ने अपने ४ दिसम्बर १८७४ के अंक में इस सभा की कार्रवाई को प्रकाशित

किया। स्वामीजी तो पं. गट्टूलाल की इस सभा में नहीं गये किन्तु उनका पक्ष लेकर पं. राजकृष्ण तथा पं. जनार्दन गोपाल ने कुछ प्रश्नोत्तर पं. गट्टूलाल से अवश्य किये।

पं. रामलाल से शास्त्रार्थ

रानी का रायपुर (जिला अम्बाला) निवासी पं. रामलाल[3] ने बम्बई में २७ मार्च १८७६ को स्वामीजी से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया। इसके अध्यक्ष पं. बुझाऊ शास्त्री थे। वहुत कुछ प्रश्नोत्तर होने पर भी पं. रामलाल वेदों का कोई प्रमाण मूर्तिपूजा के समर्थन में नहीं दे सके। कई वर्षों वाद पं. रामलाल की भेंट वैदिक यंत्रालय के तत्कालीन प्रवंधक मुंशी समर्थदान से एक यात्रा के दौरान हुई। इस वार्तालाप के प्रसंग में पं. रामलाल ने स्वीकार किया कि स्वामीजी तो संन्यासी हैं, उनको किसी बात की चिन्ता नहीं है, हम गृहस्थ हैं। हमारी आजीविका मूर्तिपूजा से ही चलती है। यदि मूर्तिपूजा के वारे में सच्ची बात को कहें तो लोग हमसे विमुख हो जाएंगे और हमारी आजीविका की हानि होगी। मुंशी समर्थदान ने यह सव वृत्तान्त तथा पं. रामलाल से अपना वार्तालाप **'देश हितैषी'** के फाल्गुन-चैत्र १९४० वि. के अंकों में प्रकाशित कराया था।

स्वामी दयानन्द गुजरात में

बम्बई में कुछ काल व्यतीत कर स्वामीजी ने गुजरात की यात्रा की। वे सर्वप्रथम गुजरात के प्रमुख नगर सूरत गये और वहां कई व्याख्यान दिये। यहां से प्रकाशित होने वाले पत्र **'गुजरात मित्र'** के सम्पादक गेलाभाई उनके अकारण विरोधी बन गए और अपने पत्र में स्वामीजी के बारे में निरर्थक आक्षेप करने लगे। शायद वे विभिन्न सम्प्रदायों पर किये जाने वाले स्वामीजी के तीखे आक्रमणों से क्षुब्ध थे। अपने पत्र के १२ दिसम्बर १८७४ के अंक में उन्होंने लिखा कि एक वैदिक धर्म को छोड़कर स्वामी दयानन्द सभी मतों को अपनी आलोचना का लक्ष्य वना रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि इस आलोचना से नाराज़ होकर लोग कोई उत्तेजनापूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त करें। पत्र ने तो यहां तक लिख दिया कि स्वामीजी की वक्तृता में स्थानीय शिक्षित और भद्रपुरुषों ने जाना ही छोड़ दिया है। वस्तुतः यह कथन मिथ्या था क्योंकि

स्वामीजी के व्याख्यानों की अध्यक्षता नगर के शिक्षित तथा सम्भ्रान्त लोग करते थे तथा इन सभाओं में भारी भीड़ एकत्र होती थी।

सूरत से भड़ौंच होते हुए स्वामीजी अहमदाबाद आए। ४ जनवरी १८७५ के **टाइम्स ऑफ इण्डिया** ने उनके व्याख्यानों के बारे में लिखा, ''अहमदाबाद में स्वामीजी दो सप्ताह से कुछ अधिक समय तक रहे। विभिन्न मतों का उनका ज्ञान प्रशंसनीय है। उन्होंने स्थानीय पण्डितों को विचार-विमर्श के लिए बुलाया। अधिकांश तो आए ही नहीं और जो आए वे स्वामीजी के समक्ष निरुत्तर हो गए।'' पत्र की सम्मति में स्वामीजी की सफलता का कारण स्थानीय सुधारक दल का उनसे सहानुभूति रखना है।[४] **'हितेच्छु'** नामक पत्र ने अपने ७ जनवरी १८७५ के अंक में स्वामीजी के अहमदाबाद प्रवास पर एक लम्बी टिप्पणी लिखी। इसमें स्वामीजी के शास्त्र ज्ञान तथा व्याख्यान कौशल की प्रशंसा के साथ-साथ यह भी लिखा था कि स्थानीय पण्डित उनसे मिलने और शास्त्रार्थ करने से बचते थे। वे अन्य लोगों को यह कहकर स्वामीजी के व्याख्यानों में जाने से रोकते थे कि दयानन्द या तो क्रिस्तान (ईसाई) है या ब्रह्मसमाजी।

अहमदाबाद से चल कर स्वामीजी ३१ दिसम्बर १८७४ को राजकोट आए। सर्वप्रथम आर्यसमाज की स्थापना राजकोट में ही हुई थी किन्तु कतिपय कारणों में उसे बन्द करना पड़ा था। २१ जनवरी १८७५ के **'हितेच्छु'** ने आर्यसमाज की स्थापना का समाचार देते हुए लिखा कि राजकोट के शिक्षित समुदाय के लोगों ने स्वामीजी के सिद्धान्तों को स्वीकार कर आर्यसमाज स्थापित कर दिया है। प्रारम्भ में इसकी सदस्य संख्या ३० है। किन्तु राजकोट में स्थापित आर्यसम।ज का शीघ्र ही विघटन हो गया। इसका कारण यह था कि बम्बई के शतावधानी और आशु कवि पं. गट्टूलाल ने एक दिन राजकोट आर्यसमाज में उपस्थित होकर कुछ ऐसे स्वयं द्वारा तत्काल रचे श्लोकों का पाठ किया जिनमें बड़ौदा के महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ को अंग्रेजों द्वारा शासन से हटाए जाने का उल्लेख था। इस सभा और इसमें पढ़े गए पं. गट्टूलाल के शासन विरोधी श्लोकों की चर्चा सार्वजनिक पत्रों, मुख्यतः **'बाम्बे गज़ट'** तथा **'टाइम्स ऑफ इण्डिया'** में छपी। आर्यसमाज राजकोट के तत्कालीन अधिकारी सरकारी सेवा में थे। जब इन पत्रों में छपी राजकोट

की सभा की जानकारी काठियावाड़ के पोलिटिकल एजेण्ट मि. जेम्स पील को मिली तो उसने आर्यसमाज के अधिकारियों को, जो अधिकांशतः राज्य कर्मचारी थे, धमकाया और कुछ को तो पदच्युत भी कर दिया। सरकार द्वारा की गई इस प्रकार की दमनात्मक कार्रवाई से नौकरी पेशा आर्य सदस्य भयभीत हो गए और राजकोट में स्थापित प्रथम आर्यसमाज का शीघ्र ही विघटन हो गया।

राजकोट से चलकर स्वामी दयानन्द पुनः अहमदाबाद आए। यहां राजकोट की तरह आर्यसमाज की स्थापना हो गई। **'हितेच्छु'** ने ११ मार्च १८७५ के अंक में आर्यसमाज की स्थापना करने पर अहमदाबाद के लोगों को बधाई दी और लिखा कि आरम्भ में इसकी सदस्य संख्या लगभग ३० है तथा इसमें नगर के अनेक प्रतिष्ठित लोग शामिल हुए हैं। प्रार्थनासमाज से जुड़े रावसाहब महीपतराम आर्यसमाज के सभासद बने किन्तु अन्य प्रार्थनासमाजियों ने इस नई संस्था से स्वयं को अलग रखा। इस प्रसंग की चर्चा करते हुए **'हितेच्छु'** ने आगे लिखा कि वेदों की प्रामाणिकता को मानने का स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त युक्तियुक्त है। पत्र ने स्वामीजी की प्रतिभा एवं योग्यता की प्रशंसा की तथा यह भी लिखा कि यदि किसी नये सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन उनका लक्ष्य होता तो वे सहस्रों शिष्यों को जुटा लेते तथा बड़ी द्रव्य-राशि एकत्र कर लेते। किन्तु उनका एकमेव लक्ष्य भारत का पुनरुत्थान तथा देश में एकता की स्थापना करने का है। वे वैदिक धर्म की उन्नति के ही इच्छुक हैं।

लगभग दो मास गुजरात के विभिन्न नगरों में धर्मप्रचार कर स्वामी दयानन्द २६ जनवरी १८७५ को पुनः बम्बई लौटे।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना

इस बार के बम्बई निवास में स्वामी दयानन्द ने १० अप्रैल १८७५ शनिवार (चैत्र शुक्ला ५ सं. १९३२ वि.) को आर्यसमाज की स्थापना की। इसकी अग्रिम सूचना **'टाइम्स ऑफ इण्डिया'** के १० अप्रैल १८७५ के अंक में प्रकाशित हुई। आर्यसमाज की स्थापना के सम्बन्ध में स्वामीजी ने एक स्थानीय आध्यात्मिक पुरुष राजकृष्ण महाराज से परामर्श किया था। ये

महानुभाव अद्वैतवादी थे। इन्होंने स्वामीजी को भी परामर्श दिया था कि वे आर्यसमाज के दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में अद्वैतवाद को मान्यता दें, किन्तु स्वामीजी तो प्रकृति, जीव तथा ईश्वर की त्रिविध सत्ताओं को अनादि मानते थे इसलिए उन्होंने राजकृष्ण के उक्त सुझाव को अमान्य कर दिया। राजकृष्ण **'हृदय चक्षु'** नामक एक मासिक पत्र निकालते थे। स्वामीजी के परामर्श से उन्होंने इस पत्र का नाम बदलकर **'आर्य धर्म प्रकाश'** रख दिया था। कुछ दिन तक तो इस पत्र में स्वामीजी के विचारानुकूल सामग्री छपती रही किन्तु जब अद्वैतवाद को लेकर उनका स्वामीजी से मतभेद हो गया तो उन्होंने अपने पत्र में मूर्तिपूजा का प्रच्छन्न समर्थन करना आरम्भ कर दिया। अब वे मूर्तिपूजा को पुराण समर्थित तथा अज्ञ जनों के लिए प्रयोजनीय बताने लगे।

बात इससे भी आगे बढ़ी। **'आर्य धर्म प्रकाश'** में 'पं. गट्टूलाल और स्वामी दयानन्द के वाद-विवाद सम्बन्धी अभिमत' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ। इसे आपत्तिजनक मानकर आर्यसमाज बम्बई के मंत्री श्री पानाचंद आनन्दजी पारेख[५] ने **'आर्य धर्म प्रकाश'** की संचालक सभा के प्रधान भाईशंकर नाना भाई को एक नोटिस भेजा जिसमें उक्त लेख को न्याय तथा वेद के विरुद्ध बताया गया था। साथ ही इन बातों पर वाद-विवाद के लिए उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया। इसके उत्तर मे भाईशंकर नाना भाई ने जो लिखा उसका सारांश यही था कि उनका **'आर्य धर्म प्रकाश'** से कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि विवादित प्रश्नों पर लेखबद्ध विचार किया जा सकता है। भाईशंकर नाना भाई ने प्रकाशित लेखक के बारे मे यह भी सफाई दी कि **'आर्य-धर्म प्रकाश'** में जो लिखा गया है उसमें स्वामीजी के अपमान जैसा कुछ नहीं था। यह प्रकरण आगे नहीं बढ़ा।

स्वामी दयानन्द का पुणे प्रवास

आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे[६] तथा महादेव मोरेश्वर कुण्टे[७] के आग्रह को स्वीकार कर स्वामी दयानन्द जून १८७५ में महाराष्ट्र की काशी कहलाने वाले पुणे नगर में आए। उनके पुणे आगमन के बारे में **'इन्दुप्रकाश'** ने १६ अगस्त १८७५ के अंक में लिखा-पूना आकर स्वामी दयानन्द ने स्थानीय पण्डितों को एक विज्ञापन देकर

उनसे यह पूछा कि वे किन ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं और किन्हें अप्रामाणिक। पण्डितों ने इसका उत्तर नहीं दिया, किन्तु उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए अवश्य कहा है। इसके लिए उन्होंने ऐसे नियम निर्दिष्ट किये हैं जिन्हें स्वामीजी द्वारा स्वीकार करना सम्भव नहीं होगा। इसी बात का संकेत 'हितेच्छु' के १८ अगस्त १८७५ में मिलता है। यहां इस बात का विशेष उल्लेख है कि स्वामी दयानन्द के पूना आगमन से यहां के धार्मिक जगत् में महान् आन्दोलन उपस्थित हो गया है। पण्डितों की ओर से स्वामीजी को जो पत्र भेजा गया उस पर स्वामीजी ने उन्हें लिख दिया कि शास्त्रार्थ के लिए जो नियम वे भेजें उन पर रानडे तथा कुण्टे की स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। इससे यह अनुमान होता है कि पूना के पण्डित स्वामीजी के समक्ष शास्त्रार्थ सभा में शायद ही उतरें।

पूना में स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिये उनमें से पन्द्रह पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं।[८] कलकत्ता के **'इण्डियन मिरर'** ने २६ नवम्बर १८७५ के अपने रविवारीय संस्करण में लिखा कि इस समय स्वामी दयानन्द बम्बई प्रदेश में आर्यसमाज को सुदृढ़ कर रहे हैं। पत्र ने आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज के कतिपय सिद्धान्तों में समानता बताते हुए दोनों के वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने के विषय में मतभेद को स्पष्ट किया।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना करने तथा गुजरात एवं महाराष्ट्र के विभिन्न नगरों में भ्रमण करने तथा व्याख्यान देने के कारण स्वामी दयानन्द को देशव्यापी ख्याति मिली। सुदूर कलकत्ता के पत्रों में उनकी चर्चा छपती रहती थी। **'बंगदर्शन'** नामक बंगला पत्र में एक लेखक ने स्वामीजी के बम्बई प्रान्त में भ्रमण तथा व्याख्यानों की चर्चा एक लेख में विस्तार से लिखी। वह लिखता है कि बम्बई तथा पूना आदि स्थानों में बहुत-से लोग आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गए हैं। बम्बई प्रदेश में भ्रमण करते हुए मैंने देखा कि वहां दयानन्द ने महाआन्दोलन उपस्थित कर दिया है। **दयानन्द की वक्तृत्व शक्ति, उनकी सामाजिक विचारधारा तथा उनकी नई प्रकार की वेद व्याख्या की सर्वत्र चर्चा है......दयानन्द सबल और दीर्घकाय हैं। उनकी वाग्मिता, तर्कशक्ति तथा स्वदेश के मंगल के प्रति निष्ठा असाधारण है।** एक बार की भेंट में

उन्होंने मुझे बताया कि इस समय उनका कार्य दो प्रकार का है, स्थान-स्थान पर आर्यसमाजों की स्थापना करना तथा वेद का भाष्य लिखना।

एक दिन मैं बम्बई के आर्यसमाज में गया। वहां अनेक भद्र लोग एकत्र होकर धार्मिक तथा सामाजिक विषयों पर चर्चा तथा तर्क-वितर्क कर रहे थे। उस दिन स्वामी दयानन्द के पूना से बम्बई आने की ख़बर थी। मैंने देखा कि बम्बई के बाज़ार का एक साधारण दुकानदार अपनी दुकान बन्द कर दयानन्द का स्वागत करने के लिए रेलवे स्टेशन को चल दिया.....मैंने सुना कि स्टेशन पर स्वागतार्थ लगभग पांच सौ व्यक्ति उपस्थित थे। स्वामीजी के विचारों की चर्चा करते हुए 'बंगदर्शन' का यह लेखक लिखता है-वे मूर्तिपूजा के विरोधी हैं। एकेश्वरवादी हैं और वेद को आप्तवाक्य मानते हैं। पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं।

आगे लेखक लिखता है-दयानन्द अंग्रेजी का बिन्दु-विसर्ग तक भी नहीं जानते। यह बात उनके पक्ष में अच्छी है। यदि वे अंग्रेजी जानते होते तो लोग कहते कि दयानन्द वेदज्ञ संन्यासी अवश्य है किन्तु अंग्रेजी पढ़ने से वे परम्परागत मान्यताओं के विरोधी हो गए हैं।....दयानन्द जो कुछ कहते हैं वह सब देश-भाव (राष्ट्रीय भावना के अनुकूल) का अनुसारी होता है। वे सदा शास्त्रीय प्रमाणों का ही प्रयोग करते हैं इसलिए प्राचीन (पुराणपन्थी) समुदाय में आन्दोलन उपस्थित हो गया है।"

यह था स्वामी दयानन्द का प्रथम बम्बई आगमन। उस यात्रा का महत्त्व इस दृष्टि से भी था कि इसी दौरान उन्होंने उस आन्दोलन (आर्यसमाज) की आधारशिला रखी जिसने आगे चलकर उनके विचारों का विश्वव्यापी प्रचार किया।

स्वामी दयानन्द का द्वितीय वार का बम्बई आगमन

आर्यसमाज बम्बई के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए स्वामीजी ३० दिसम्बर १८८१ को अन्तिम बार इस नगर में आए और २४ जून १८८२ तक यहां रहकर राजस्थान चले गये। आर्यसमाज बम्बई के वार्षिकोत्सव में स्वामीजी का उपस्थित रहना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। अजमेर के **'देश-हितैषी'** (वैशाख १९३९ वि.) ने इस पर लिखा-"आर्यसमाज बम्बई का

वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ और ऐसे समय में स्वामी दयानन्दजी महाराज का वहां उपस्थित रहना अत्यन्त आनन्दप्रद रहा।" स्वामीजी की उपस्थिति में आर्यसमाज बम्बई के सम्मानित सभासद सेठ मथुरादास लवजी ने एक विज्ञापन का वितरण किया जिसमें यह लिखा था कि जो कोई मूर्तिपूजा को वेदोक्त और शास्त्रविहित सिद्ध कर देगा उसे वे पांच हजार रुपये से पुरस्कृत करेंगे। इस समाचार को पंजाब के अखबारों ने भी प्रकाशित किया। उर्दू पत्र **'आफताब-ए-पंजाब'** ने इसे बम्बई के किसी अंग्रेजी पत्र के हवाले से छापा तो स्यालकोट से छपने वाले **'विक्टोरिया पेपर'** ने इसे **'आफताब-ए-पंजाब'** के आधार पर प्रकाशित किया-(जुलाई १८८२) शाहजहांपुर के **'आर्य दर्पण'** ने भी इस समाचार को प्रमुखता देकर छापा तो अजमेर के **'देशहितैषी'** ने उसी के हवाले से २० जनवरी १८८३ के अंक में मथुरादास लवजी द्वारा घोषित पुरस्कार का समाचार प्रकाशित किया।

इस बार के बम्बई निवास में स्वामी दयानन्द ने फ्रामजी कावसजी हाल तथा कुछ अन्य स्थानों पर १ जनवरी १८८२ से १७ जून १८८२ तक लगातार लगभग २४ व्याख्या दिये।[९] इन व्याख्यानों का विषय-निर्देश तथा तिथि आर्यसमाज बम्बई के पुराने रजिस्टरों में लिखी मिलती है। **'मुम्बई समाचार'** ने भी इन वक्तृताओं का सार-संक्षेप उद्धृत किया था। पं. घासीराम ने स्व-सम्पादित जीवनचरित में इन व्याख्यानों का संक्षिप्त वृत्तान्त दिया है परन्तु उक्त पत्र के किस अंक में यह विवरण छपा, इसका संकेत नहीं दिया। **'मुम्बई-समाचार'** के १३ जून १८८२ के अंक में व्यंकटेश्वराचार्य नामक एक पण्डित ने स्वामीजी को चुनौती देते हुए लिखा कि मैं वेदों में मूर्तिपूजा की उपस्थिति को सिद्ध कर सकता हूं। किन्तु इसके निर्णय के लिए विद्वानों की एक समिति गठित होनी चाहिए। उसने तो यहां तक लिख दिया कि भीरुता के कारण स्वामीजी उसके सम्मुख आने में संकोच करते हैं। इसका उत्तर स्वामीजी के संस्कृतज्ञ शिष्य पं. रामदास छबीलदास ने श्लोकबद्ध शैली में दिया।[१०]

'थियोसोफिस्ट' ने अपने जनवरी १८८२ के अंक मे स्वामीजी के बम्बई आगमन का समाचार देते हुए लिखा था कि हमारे माननीय मित्र दयानन्द सरस्वती स्वामी ३० दिसम्बर १८८१ को इन्दौर से यहां आकर

बालकेश्वर में ठहरे हुए हैं। उनका स्वास्थ्य उत्तम है। आशा की जाती है कि वे यहां दो महीने रहेंगे और वेदों पर आधारित अपने विचार व्यक्त करेंगे।

पादरी जोसफ कुक का स्वामीजी से पत्र-व्यवहार

एक यूरोपियन पादरी रेवरेण्ड जोसफ कुक उन दिनों बम्बई में स्वमत के प्रचार के लिए आए हुए थे। बम्बई के टाउन हाल में उन्होंने १७ जनवरी १८८२ को एक व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने ईसाइयत को ईश्वर प्रेरित धर्म बताया और समस्त भू-मण्डल पर उसके फैलने की भविष्यवाणी की। स्वामी दयानन्द ने पादरी साहब की इन धारणाओं को अस्वीकार करते हुए १८ जनवरी १८८२ को उन्हें एक पत्र लिखा और कहा कि वे उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए आगे आएं। कर्नल ऑल्काट ने इस पत्र का अंग्रेजी अनुवाद किया था। कर्नल ने एक पृथक् पत्र पादरीजी को लिखा तथा उनसे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का आग्रह किया। उत्तर में पादरी कुक ने २० जनवरी को कर्नल ऑल्काट को लिखा कि वे शास्त्रार्थ की चुनौतियों को स्वीकार नहीं करते। यह सारा प्रसंग **'थियोसोफिस्ट'** ने फरवरी १८८२ के अंक में परिशिष्ट रूप में छापा था।

बम्बई से स्वामीजी ने इन्दौर होते हुए उदयपुर के लिए प्रस्थान किया।

बम्बई प्रान्त में स्वामी दयानन्द : मराठी पत्र क्या लिखते हैं?

डा. कुशलदेव शास्त्री[11] ने स्वामी दयानन्द के तत्कालीन बम्बई प्रान्त के निवास तथा तत्सम्बद्ध प्रवृत्तियों को सम-सामयिक मराठी भाषा के पत्रों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। एतद् विषयक उनकी सामग्री वेदवाणी (रामलाल कपूर ट्रस्ट की मुख पत्रिका) के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई है। यहां हम इसी शोध सामग्री के आधार पर आगे का विवरण लिख रहे हैं।

ईसाई मासिक पत्रिका 'सत्यदीपिका' में प्रकाशित सन्दर्भ

जिस समय स्वामी दयानन्द पुणे[12] में विराजमान होकर न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे तथा अन्यों के आग्रह पर अपने व्याख्यान दे रहे थे, नगर की समीपवर्ती बस्ती में रहने वाले कथित दलित जाति के कुछ लोगों ने स्वामीजी की सेवा में एक पत्र भेजा और उनसे आग्रह किया कि वे जहां

नगरवासियों को अपने उपदेशों से कृतार्थ कर रहे हैं, उन्हें भी उपदेश प्रदान करें। एतदर्थ उनकी विनय थी कि आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी १९३२ वि. शुक्रवार सायं ७ बजे पूना जूनागंज स्थित मोमिनपुर के शूद्र-अतिशूद्रों के विद्यालय में जहां आपके व्याख्यान की व्यवस्था कर ली गई है, वहां आप पधारें तथा हमें यथोचित उपदेश दें। १३ जुलाई १८७५ को यह पत्र लिखा गया था तथा इस पर शूद्र वर्ग के छः लोगों के हस्ताक्षर थे[13]।

महाराष्ट्र के ईसाइयों की मासिक पत्रिका **'सत्यदीपिका'** ने अपने अगस्त १८७५ के अंक में उक्त पत्र को 'प्रस्तुत वृत्त आणि अभिप्राय' शीर्षक से प्रकाशित किया तथा उस पर एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी छापी। इसमें सम्पादक ने लिखा-''पण्डित श्रेष्ठ (दयानन्द) ने ब्राह्मणों के बाड़े (भिड़े का बाड़ा-व्याख्यान स्थल) में बैठकर केवल मुख से ही कह दिया कि वेद सबके लिए हैं और सबको उनका अध्ययन करना चाहिए परन्तु तद्नुसार करने का अवसर जब आया तब स्वामीजी ने टालमटोल शुरू कर दी।'' **'सत्यदीपिका'** का लिखना था कि स्वामीजी ने दलितों की सभा में जाने तथा वहां उपदेश देने से इंकार कर दिया।

'सत्यदीपिका' का यह कथन सर्वथा असत्य था। वस्तुतः स्वामीजी उक्त सभा में गये थे तथा उन्होंने निमंत्रणदाता दलितों को सम्बोधित भी किया था। जब इस तथ्य का पता **'सत्यदीपिका'** के सम्पादक को लगा तो उसने अपने पत्र के अक्टूबर १८७५ के अंक के अन्त में 'महारांची सभा' शीर्षक से एक संक्षिप्त नोट छापा जिसमें यह लिखा गया कि 'प्रस्तुत महारों (जाति) की सभा में उक्त पण्डित ने व्याख्यान दिया परन्तु उस विषयक कोई प्राथमिक विवरण अभी हमें प्राप्त नहीं हुआ है। सच तो यह था कि **'सत्यदीपिका'** में जब उक्त सभा का विवरण प्रकाशनार्थ किसी ने नहीं भेजा तो सम्पादक ने यह समझ लिया कि स्वामीजी ने दलितों के समक्ष जाना उचित नहीं समझा। साथ ही उसने यह निष्कर्ष निकाला कि स्वामीजी की दलितों और निम्न वर्गों के प्रति सहानुभूति (उन्हें वेदादि शास्त्रों के पठनाधिकार की बात) केवल कहने के लिए ही है। किन्तु जब उसे सच्चाई का पता चला तो उसे अपनी पत्रिका में उक्त प्रतिवाद छापना पड़ा।

'सत्यदीपिका' (मई १८७६) में स्वामी दयानन्द विषयक अन्य लेख

इस ईसाई पत्रिका के सम्पादक बाबा पदमनजी नामक कोई हिन्दुस्तानी ईसाई थे। उक्त लेख में उन्होंने आर्यसमाज के सदस्य हरिश्चन्द्र चिन्तामणि[१४] (जन्मना सुनार) की पुत्री को स्वामी दयानन्द द्वारा यज्ञोपवीत दिये जाने का लक्ष्य बनाकर स्वामीजी पर नाना प्रकार के कटाक्ष किये। प्रथम तो उसने लिखा कि स्वामी दयानन्द के आदेश पर जिन ब्राह्मणों ने गायत्री मंत्र के जो अर्थ 'बटु'[१५] को बताये, वे सही नहीं थे। पुनः उसने यज्ञोपवीत ग्रहण करने वाले के पिता हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के बारे में लिखा कि वह तो हिन्दू धर्म से पहले ही पृथक् हो गया था। वह थियोसोफिस्ट तथा फ्रीमेसन हैं।[१६] उसने दो बार सपरिवार इंग्लैण्ड की यात्रा की तथा वह अपनी जाति की परवाह नहीं करता। इस प्रकार यजमान पर व्यंग्यात्मक कटाक्ष करने के पश्चात् उसने लिखा कि पण्डितजी (दयानन्द) ने हरिश्चन्द्र सुत (सुता) को द्विज बनाया और उस गड़बड़ी में बेचारे शिव-पार्वती सुत[१७] को मण्डप के बाहर कर दिया। सम्पादक का आशय था कि इस उपनयन संस्कार में गणेश पूजन नहीं हुआ।

सम्पादक का यह सारा लेख ही स्वामी दयानन्द के प्रति उसके विद्वेष तथा दुष्टतापूर्ण मताग्रह को दर्शाता है। उसने स्वामीजी की इस धारणा पर भी कटाक्ष किया कि यज्ञोपवीत विद्याध्ययन की निशानी (प्रतीक) है तथा हवन करने से दुर्गन्ध नष्ट होती है।[१८] स्वामी दयानन्द के इस विचार का उपहास करते हुए सम्पादक ने लिखा कि हवन करते समय स्वामीजी वेदमंत्रों को पढ़ने का विधान करते हैं, साथ ही वायु-शुद्धि तथा स्वच्छता के लिए हवन करने का आदेश भी देते हैं, तो हरिश्चन्द्र जैसे उनके अनुयायी अपने आंगन को साफ करते तथा जूते साफ करते समय मंत्रों का उच्चारण क्यों नहीं करते?

सत्य तो यह है कि जब कोई मनुष्य दुराग्रही बन कर विद्वेषमूलक बातें लिखने लगता है तो ऐसी कटूक्तियों की कोई सीमा नहीं रहती। यही कारण था कि इस सम्पादक ने स्वामीजी की आलोचना में सब प्रकार की मर्यादाओं और औचित्य को त्याग दिया। वह लिखता है कि जब स्वामी दयानन्द एकेश्वर की उपासना की बात कहते हैं तो माता, पिता और आचार्य को देव मानकर उनकी सेवा का उपदेश क्यों देते हैं?[१९] बाबा पदमनजी (सम्पादक) का यह लेख

'Facts and opinions' 'प्रस्तुत वृत्त आणि अभिप्राय' शीर्षक से 'सत्यदीपिका' में छपा था।

'सत्यदीपिका' में स्वामी दयानन्द विषयक एक अन्य उल्लेख

महामति महादेव गोविन्द रानडे तथा महादेव मोरेश्वर कुण्टे के आग्रह पर स्वामी दयानन्द पुणे आये तथा वहां उन्होंने लगभग पचास व्याख्यान दिये। पूना प्रवचन (उपदेश मंजरी) नामक ग्रन्थ में इनमें से तुरन्त लिपिबद्ध किये गये पन्द्रह व्याख्यानों को प्रकाशित किया गया है। जिन दिनों स्वामीजी पूना में व्याख्यान देने के लिए उपस्थित थे, उन्हीं दिनों प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय जन्मना ब्राह्मण किन्तु बाद में ईसाई बने पादरी नीलकण्ठ शास्त्री[२०] (ईसाई नाम फादर नेहेम्या गोरे) उसी नगर में आए हुए थे। उनके व्याख्यान भी हिन्दू क्लब (भिड़े का बाड़ा) में उसी स्थान पर होते थे जहां पहले दिन स्वामीजी अपनी वक्तृता देते थे। ईसाई मासिक पत्रिका **'सत्यदीपिका'** के सम्पादक बाबा पदमनजी ने इस पत्रिका के अगस्त १८७५ के अंक में लिखा, "गत मास (जुलाई १८७५) पुणे में दो विद्वान् पुरुषों ने जनता के सामने अपनी-अपनी विद्वता का प्रकाश किया। रेवरेण्ड नीलकण्ठ शास्त्री गोरे व पं. दयानन्द सरस्वती-ये दोनों संस्कृत भाषाभिज्ञ हैं। उन्होंने जो पुणे शहर में व्याख्यान दिये, उन्हें सुनने के लिए बहुत-से लोग एकत्रित होते थे। शास्त्री महाराज (नीलकण्ठ गोरे) के व्याख्यान ईसाई धर्म के प्रतिपादनार्थ थे और पण्डितजी (दयानन्द) के व्याख्यान वैदिक धर्म के मण्डनार्थ थे। स्वामीजी का एक व्याख्यान सुनने के लिए हम स्वयं (मुम्बई से पुणे) गये थे।....जिस व्याख्यान में हम उपस्थित थे, उसका विषय वेद था।"

स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों में श्रोतागण अत्यधिक संख्या में उपस्थित रहते थे जबकि पादरी गोरे के भाषणों में श्रोताओं की उपस्थिति अत्यन्त न्यून रहती थी। इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर स्वामी दयानन्द के कट्टर विरोधी और प्रमुख आलोचक पं. विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने अपने 'वक्तृत्व' शीर्षक निबन्ध की एक पाद-टिप्पणी में लिखा-"गत जुलाई मास में हिन्दू क्लब (अर्थात् भिड़े का बाड़ा) में बड़ा संघर्ष चल रहा था। (एक ही स्थान पर) पहले दिन स्वामीजी के और दूसरे दिन रेवरेण्ड (नीलकण्ठ शास्त्री) महाराज के व्याख्यान होते थे। पादरी के व्याख्यान-काल में चाहे तो प्रत्येक श्रोता अपना

बिस्तरा लगाकर आराम से प्रभु ईसामसीह का ध्यान लगाने की भी योजना बना लेता तो भी सभागृह में जगह शेष रह जाती थी। (सारांश में) स्वामीजी की तुलना में रेवरेण्ड नीलकण्ठ शास्त्री के व्याख्यानों की दशा बहुत ही दयनीय थी।" निबंधमाला-नवम्बर १८७५

स्वामी दयानन्द के जीवनी लेखकों तथा पूना प्रवचनों के सम्पादकों ने तो स्वामीजी के पुणे प्रवचनों की अवधि में उसी नगर में फादर गोरे की उपस्थिति तथा उसी स्थान पर जहां स्वामीजी के व्याख्यान होते थे, एक दिन के अन्तर से गोरे के व्याख्यान देने का उल्लेख नहीं किया किन्तु महादेव गोविन्द रानडे के जीवनी लेखक न.र. फाटक ने इस तथ्य का उल्लेख अपनी पुस्तक 'न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे यांचे चरित्र' (पृ. १४६) में इस प्रकार किया है-"पुराणमताभिमानी महामहोपाध्याय रामशास्त्री आप्टे के अतिरिक्त एक और सज्जन दयानन्द के उपदेशों को निष्प्रभ बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। वे धार्मिक दृष्टिकोण से ईसाई होने के बावजूद जन्मना जाति से हिन्दू ही थे। उनका नाम था रेवरेण्ड नीलकण्ठ शास्त्री। जिस स्थान पर दयानन्दजी के भाषण होते थे, उसी स्थान पर दूसरे दिन रेवरेण्ड महाराज के व्याख्यान होते थे, पर उनके व्याख्यानों में प्रायः श्रोताओं का अभाव ही रहता था।"

मराठी दम्भहारक (पौराणिक पत्र) में स्वामी दयानन्द विषयक सन्दर्भ

पौराणिक विचारधारा के प्रतिनिधि मराठी पत्र **'दम्भहारक'** का प्रकाशन १८७२ में आरम्भ हुआ। इस पत्र ने ईसाई पत्रिका **'सत्यदीपिका'** में हिन्दू धर्म पर किये जाने वाले आक्षेपों का उत्तर देने में कटिबद्धता दिखाई। एक कदम आगे बढ़कर यह पत्र ईसाई मत का खण्डन करने में भी पीछे नहीं रहता था। इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर **'सत्यदीपिका'** के सम्पादक बाबा पदमनजी ने लिखा था कि **'दम्भहारक'** का एक भी अंक ऐसा नहीं होता जिसमें ईसाई धर्म और ईसाइयत की निन्दा न हो। इस आक्षेप का उत्तर देने में **'दम्भहारक'** पीछे नहीं रहा। उसने लिखा कि **'सत्यदीपिका'** का तो जन्म ही हिन्दू धर्म को डुबोने के लिए हुआ है। उसके प्रत्येक अंक में हिन्दू धर्म की निन्दा रहती है।

दोनों पत्रों की इस नोक-झोंक को एक ओर रखकर यदि **'दम्भहारक'** के अंकों पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि उसमें स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज पर यदा-कदा अनुकूल-प्रतिकूल दोनों लिखा जाता था। इस पत्र के अगस्त १८७६ के अंक में 'रामायणातील' प्रस्तुत विचार गोष्ठी' शीर्षक एक लेख छपा। इसमें वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के ६६वें सर्ग के दो श्लोक (४२, ४३) उद्धृत किये गये[२१]। इन श्लोकों का भाव यह है कि 'राक्षसेश्वर रावण जहां जहां जाता था वहां वहां स्वर्णनिर्मित शिवलिंग साथ में ले जाता था। उस स्वर्णनिर्मित लिंग को वह मिट्टी की वेदी पर स्थापित कर गन्ध, पुष्पादि से उसकी अर्चना करता था।'[२२] इन श्लोकों को उद्धृत कर यह पत्र लिखता है कि इन प्रमाणों से रामायण काल में मूर्तिपूजा सिद्ध होती है। कदाचित् यह प्रमाण स्वामी दयानन्द के सामने पेश किये जाएं तो वे इन्हें प्रक्षिप्त कहकर अप्रामाणिक घोषित कर देंगे।[२३]

'दम्भहारक' ने इस प्रसंग को हिन्दी की किसी पत्रिका **'काशी-पत्रिका'** से लेकर उद्धृत किया था।

प्रार्थनासमाज की साप्ताहिक पत्रिका 'सुबोध पत्रिका' में स्वामी दयानन्द विषयक सन्दर्भ

स्वामी दयानन्द के बम्बई आगमन के समय महाराष्ट्र में प्रार्थनासमाज एक जीती-जागती संस्था थी। इसकी स्थापना १८६७ में मुख्यतः ब्रह्मसमाज के एकेश्वरवाद तथा समाज-सुधार के सिद्धान्तों को स्वीकार कर की गई थी।[२४] इस संस्था के प्रमुख लोगों में महादेव गोविन्द रानडे, पुरातत्त्वज्ञ रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर आदि के नाम लिए जाते हैं। स्वामी दयानन्द जब अक्टूबर १८७४ में बम्बई आये तो प्रार्थनासमाज के लोगों ने ही उनका स्वागत किया तथा उनके विचारों के प्रति सहानुभूति दिखलाई थी।[२५] स्वामीजी के प्रथम (संन्यास ग्रहण करने के बाद) गुजरात प्रवास में भी राजकोट तथा अहमदाबाद के प्रार्थनासमाजियों ने ही उनके व्याख्यानों की व्यवस्था की थी।[२६] जब १८७६ में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना हो गई और उसके साप्ताहिक सत्संग बिना किसी व्यवधान के होने लगे तो इन अधिवेशनों की तिथि, उनमें बोलने वाले वक्ताओं के नाम तथा व्याख्यानों के विषय की सूचना तत्कालीन पत्रों में छपने लगी। जिस प्रकार आज के पत्रों में स्थानीय कार्यक्रमों

की अग्रिम सूचना **'आज के कार्यक्रम'** जैसे शीर्षक देकर छपती है उसी प्रकार साप्ताहिक **'सुबोध-पत्रिका'** में आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों की सूचनाएं **'मुम्बई समाचार'** शीर्षक नियमित स्तम्भ में छपती थीं। डा. कुशलदेव शास्त्री ने **'सुबोध पत्रिका'** के दिसम्बर १८७७ से लगाकर दिसम्बर १८८० (तीन वर्ष) तक की इस पत्र में छपी सूचनाओं के आधार पर बम्बई आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों की तिथि, वक्ताओं के नाम तथा व्याख्यानों के विषयों का संकलन किया है।[२७] इस अवधि में स्वामी दयानन्द को तो बम्बई के आर्यसमाज में बोलने का अवसर नहीं मिला (वे १८८२ में पुनः बम्बई आये थे) किन्तु इस पत्र के **'वर्तमान सार'** शीर्षक स्तम्भ में उनके बारे में कुछ समाचार छपे थे। ११ जनवरी १८८० की **'सुबोध पत्रिका'** में बनारस का यह समाचार छपा कि स्वामी दयानन्द के भाषण पर वहां के मैजिस्ट्रेट ने प्रतिबन्ध लगा दिया है। इसका कारण **'इण्डियन मिरर'** ने यह बताया है कि यहां स्वामीजी के मूर्तिपूजा विषयक भाषण से लोगों के क्षुब्ध होने और दंगे होने की संभावना थी।[२८] **'सुबोध-पत्रिका'** ने यह समाचार **'अमृत बाजार पत्रिका'** के सौजन्य से प्राप्त किया था। १६ मई १८८० की **'सुबोध-पत्रिका'** के **'वर्तमान सार'** स्तम्भ में यह समाचार छपा-पं. दयानन्द सरस्वती सम्प्रति लखनऊ में है। वहां उन्होंने ६ मई को आर्यसमाज की स्थापना की है।

'सुबोध पत्रिका' के २१ दिसम्बर १८७४ के अंक में स्वामी दयानन्द के प्रथम बम्बई आगमन का विवरण छपा था। २३ फरवरी १८७९ की **'सुबोध-पत्रिका'** ने दो कालमों में थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक द्वय-कर्नल एच.एस. ऑल्काट तथा मैडम एच.जी. ब्लैवेट्स्की के भारत आगमन तथा बम्बई में उनके निवास का विस्तृत विवरण प्रकाशित किया। इसमें स्वामी दयानन्द विषयक निम्न सन्दर्भ उल्लेखनीय है, "अमरीकन लोगों ने थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की तो लगभग उसी समय मुम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की। जब यह बात अमेरिकन लोगों को मालूम हुई तो उन्होंने स्वामीजी के साथ पत्र-व्यवहार शुरु किया।[२९]......कुछ दिन हुए अमेरिका में इनके अनुयायियों में से किसी एक बड़े व्यक्ति का देहान्त हो गया। उसके द्वारा अपने मृत्यु-पत्र में लिखे गये निर्देश के अनुसार उन्होंने

उसके पार्थिव शरीर का दहन किया और बाद में स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित विधि के अनुसार उसकी राख समुद्र में डाल दी।"[३०]

"इनके यहां आने का हेतु आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के सहयोग से वेदान्तर्गत वैदिक ज्ञान से सुपरिचित होना है। ये लोग यहां रहकर वेदों का जो अर्थ स्वामीजी बताएंगे उसे मान्य करेंगे। सारांश यह कि ये लोग स्वामीजी को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करेंगे।"[३१]

विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की निबन्धमाला में स्वामी दयानन्द विषयक कटाक्षपूर्ण उल्लेख

मराठी के प्रगल्भ लेखक तथा **'निबन्धमाला'** नामक मासिक पत्र के सम्पादक (वस्तुतः लेखक) विष्णु शास्त्री चिपलूणकर स्वामी दयानन्द के कट्टर विरोधी थे। यदि उन्हें स्वामी दयानन्द की अप्रतिम ख्याति से उत्पन्न ईर्ष्या रखने वाला विद्वेषी भी कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। औचित्य-अनौचित्य, सत्य-असत्य, लाभ-हानि सबको दरकिनार कर एकमात्र दयानन्द-निन्दा में ही अपनी लेखनी का उपयोग उन्हें इष्ट था। उन्होंने अपनी **'निबन्धमाला पत्रिका'** में 'वक्तृत्व'[३२] शीर्षक एक सुदीर्घ निबन्ध लिखा। इसमें उन्होंने ब्रह्मसमाज के नेता केशवचन्द्र सेन तथा उनके अनुवर्ती प्रतापचन्द्र मजूमदार के वक्तृत्व कौशल पर संक्षिप्त रूप से लिखकर स्वामी दयानन्द की वक्तृत्व कला पर लिखने के व्याज से स्वामीजी के बारे में अपने हृदय के समस्त कलुष को उड़ेल कर रख दिया। कटु व्यंग्य, तीक्ष्ण कटाक्ष, मर्मभेदी शब्दावली तथा गाली-गलौच की सीमा तक पहुंचने वाली शैली का उपयोग उन्होंने स्वामी दयानन्द के विचारों और कार्यों की समीक्षा के लिए किया। उन्होंने महाविख्यात (व्यंग्य में) स्वामीजी को बुद्ध, ईसा मसीह और मुहम्मद की भांति 'नए पन्थ के प्रवर्त्तक होने के लिए लालायित' बताया। पुनः स्वामीजी पर आरोप लगाया कि वे कबीर, तुलसी, तुकाराम आदि को महामूर्ख एवं महादुष्ट कहते हैं।[३३] स्वामी दयानन्द के पूना में कथित आत्मवृत्तान्त का सन्दर्भ लेकर चिपलूणकर लिखते हैं कि अपने जीवन के बीस वर्ष तो दयानन्द ने मूर्तिपूजा के घोर पाप मार्ग का अनुसरण करने में बिताए[३४]। उनके शिष्य उनकी उपमा लूथर से देते हैं।[३५] चिपलूणकर का मत है कि दयानन्द के

सहयोग से संस्कृत-ज्ञान-शून्य व्यक्ति भी अपने आपको महापण्डित मानकर बड़े-बड़े पण्डितों से शास्त्रार्थ करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द के प्रति निन्दा-कुत्सा का अपावन परनाला खोलने के पश्चात् चिपलूणकर ने उनके पूना प्रवास तथा वहां दी गई वक्तृताओं पर जमकर प्रहार किया। उसके कथनानुसार दयानन्द ने ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के अनुकरण पर प्राचीन पण्डितों के प्रवचन करने की पुरानी परिपाटी को त्यागा और कुर्सी-मेज लगाकर बोलने की प्रथा को स्वीकार किया है।[३६] दयानन्द भी लोगों को एक नया धर्म देने का दम्भ करते हैं।[३७] उनके इन व्याख्यानों, उपदेशों और पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा प्रचार करने पर तैंतीस कोटि देवताओं में से एक भी कम नहीं हुआ और न एक मूर्ति खण्डित हुई।[३८] दयानन्द प्रत्येक अवसर पर अपनी विद्वता तथा वेदाभिमान को ज़ाहिर करते हैं। मूर्तिपूजा का सर्वनाश करना इस धर्म संस्थापक का मुख्य उद्देश्य है।

ऐसा लगता है कि पूना में स्वामी दयानन्द को जो असाधारण आदर-सत्कार मिला, वहां की जनता ने उनकी विचारोत्तेजक वक्तृताओं को ध्यानपूर्वक सुना तथा इस व्याख्यानमाला की समाप्ति पर उनका जैसा अभिनन्दन हुआ, इस सबसे जल-भुन कर वे अपनी सम्पूर्ण लेखन शक्ति को दयानन्द के प्रति कटूक्तियों की वर्षा में लगा बैठे। उनके व्यंग्य की तिक्तता इस कथन से स्पष्ट होगी, "ऐसे श्रीमतपरमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य आदि अनेक गुण विराजमान दयानन्दजी की स्तुति एकाध पृष्ठ में भला कैसे समाप्त होगी?" यहीं पर पाद-टिप्पणी देकर चिपलूणकर ने पूना में स्वामी दयानन्द के अभिनन्दन में निकाले गये जुलूस तथा विरोधी व विद्वेषी लोगों द्वारा उस शोभायात्रा में बाधा पहुंचाने और गुण्डागर्दी करने का अपनी व्यंग्यात्मक शैली में उल्लेख किया। उसने स्वामीजी द्वारा यज्ञों से पर्यावरण की शुद्धि तथा वेदों में विद्यमान तारयंत्रादि के सन्दर्भों[४०] को व्याख्यानों में चर्चित किये जाने का उपहास तो किया ही, स्वामी द ानन्द को पूना बुलाकर उनके व्याख्यान कराने में हेतुभूत महादेव गोविन्द रानडे तथा महादेव कुण्टे को अपमानित व लांछित करने में भी संकोच नहीं किया।

चिपलूणकर के अनुसार 'पण्डितमन्य तथा अहंकारी परमहंस (दयानन्द) ने पूना में यदि अकाण्ड-ताण्डव किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या? उसके अनुसार स्वामी दयानन्द पूना निवास के दौरान ऐश-ओ-आराम में मस्त रहे। तथापि चिपलूणकर को प्रकारान्तर से यह तो मानना पड़ा कि पूना में प्रदत्त दयानन्द की वक्तृत्व-शृंखला असाधारण थी। उनकी वक्तृत्व कीर्ति के लिए उसने दो कारण बताए-१. स्थान माहात्म्य और २. विषय माहात्म्य। वह मानता है कि पूना जैसे महाराष्ट्र के विश्रुत नगर में रानडे तथा कुण्टे ने स्वामीजी के पक्ष में वातावरण तैयार किया और द्वितीय बात, पौराणिक धर्म पर हास्य-व्यंग्य की शैली में प्रहार कर दयानन्द ने अपने व्याख्यान-विषय को रोचक तथा रंगीन बना दिया। तथापि उसने स्वीकार किया कि दयानन्द की स्निग्ध, मधुर, धीर, गम्भीर वाणी, उनकी भव्य मुखाकृति, सशक्त शरीर, उन्नत आसन, नाटकीय हाव-भाव तथा सुशोभन वस्त्रसज्जा ने उनकी वक्तृत्व कला का उत्कृष्ट परिपाक (पूर्ण विकास) कर दिया।

पं. विष्णु शास्त्री चिपलूणकर द्वारा स्वामी दयानन्द की असहिष्णुता तथा कठोर पूर्वाग्रहयुक्त उक्त आलोचना को पाठकों ने सहन कर लिया था, यह कहना भी ठीक नहीं। निश्चय ही देशवासी स्वामी दयानन्द की सदाशयता, धर्म, सत्य और न्याय के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, स्वधर्म और स्वदेश के प्रति उनकी निष्ठा को स्वीकार करते थे। इसीलिए जब **'निबन्धमाला'** में चिपलूणकर ने उनकी वक्तृत्व कला की आलोचना के बहाने स्वामी दयानन्द के विचारों और सिद्धान्तों पर कटु आक्षेप किये तो एक पाठक ने **'निबन्धमाला हितेच्छु'** के नाम से उसका प्रतिवाद किया। इसमें उसने प्रथम तो ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज तथा आर्यसमाज जैसी सुधार संस्थाओं पर लांछन लगाने के चिपलूणकर के प्रयत्नों को मात्र विडम्बना कहा तथा उनकी लेखनशैली को उपहासात्मक बताया। उसने चिपलूणकर से साफ कहा कि यह निन्दा युक्त लेख लिखकर आपने पूना में दयानन्द के व्याख्यानों के संयोजकों (उसका आशय न्यायमूर्ति रानडे तथा कुण्टे की ओर था) का अमर्यादित उपहास किया है। उसने चिपलूणकर के इस आक्षेप को सिरे से ही ख़ारिज कर दिया कि सभी सुधारकों (इनमें स्वामी दयानन्द सर्वप्रमुख हैं) की बातें निरर्थक, अविचारी, दाम्भिकतापूर्ण तथा कृत्रिम अभिनयप्रधान होती हैं।

निष्कर्षतः उसने लिखा कि केवल पक्षपात भाव से, उपहास शैली में दोष-दर्शन कराना आप जैसे निबन्ध लेखक को शोभा नहीं देता।

इस आलोचना में उसने प्रत्यक्ष नामोल्लेखपूर्वक लिखा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे परोपकार बुद्धि वाले व्यक्ति के प्रति अथवा ब्रह्मसमाज के नेता राजा राममोहन राय, बाबू देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा बाबू केशवचन्द्र सेन इत्यादि सद्‌बुद्धि प्रेरित, परोपकारी, सच्चे स्वाभिमानी महापुरुषों द्वारा प्रारम्भ किये गये सुधार अभियानों के प्रति, बिना अनुभव के, यथेच्छ उपहासपूर्ण लेखन करने से आपको कोई लाभ मिलेगा, ऐसा मैं नहीं मानता। पाद-टिप्पणी में लेखक ने यह भी लिख दिया कि यद्यपि वह स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेद विषयक मत को पूर्णतया तर्कसंगत नहीं समझता, तथापि उनकी निःस्पृहता तथा स्वदेश के प्रति लोगों में स्वाभिमान जगाने की उनकी भावना को स्वीकार करता है और उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखता है। चिपलूणकर के निन्दा-कुत्सा युक्त लेख का प्रतिवाद करने वाले **'निबंधमाला हितेच्छु'** के नाम से लिखने वाले इस लेखक का वास्तविक नाम श.ब. वामन आबाजी मोडक बताया गया है।[४१]

'निबन्धमाला हितेच्छु' तथा अन्यों ने मौखिक एवं लिखित रूप से जब चिपलूणकर की 'वक्तृत्वकला' में व्यक्त किये गये दयानन्द सरस्वती के प्रति कटुतायुक्त वाक्यों का तीव्र प्रतिपाद किया तो उसने एक बार फिर अपने लेख के समर्थन में लेखनी उठा ली। **'निबन्धमाला'** के १८७६ के अन्तिम अंक में उसने पुनः स्वामी दयानन्द पर जमकर प्रहार किये तथापि दबे स्वर से उसने यह तो माना कि दयानन्द के प्रकाण्ड पाण्डित्य की जांच करने जितना शास्त्रज्ञान उसमें भी नहीं है। चिपलूणकर का स्वामीजी के प्रति दुराग्रह या पूर्वाग्रह कितना प्रबल था, यह तो इसी बात से जाना जाता है कि वह उनकी स्वदेश-हित की वृत्ति, लोकोपकार की भावना तथा सद्धर्मप्रचार विषयक उनके प्रयत्नों को 'दूरतः पर्वताः रम्याः' की उक्ति का प्रयोग कर काल्पनिक बताता है।[४२] चिपलूणकर के सन्तोष का एक कारण इसलिए भी बन गया कि स्वामी दयानन्द के पूना से चले जाने के बाद वहां का आर्यसमाज कुछ अधिक सफल नहीं रहा।[४३] उसने पूना प्रवचनों को मुद्रित कराने को धन का अपव्यय बताया। इस प्रकार पुनः स्वामीजी के प्रति अपशब्दों की वर्षा कर उसने अपने इस प्रत्युत्तर को समाप्त किया।

निश्चय ही विष्णु शास्त्री चिपलूणकर स्वामी दयानन्द के जीवन पर्यन्त विरोधी बने रहे। किन्तु शीघ्र ही ''मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है, होता वही है जो मंज़ूर-ए-खुदा होता है'' वाली कहावत चरितार्थ हुई। स्वामी दयानन्द के विचारों और कार्यों की चर्चा अमेरिका तक पहुंच गई। थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों ने उनसे पत्राचार किया, स्वयं को उनका शिष्य घोषित किया तथा स्वामीजी के प्रत्यक्ष दर्शन करने, उनसे विचार-विमिनय करने एवं थियोसोफी के आन्दोलन को आर्यसमाज का अनुवर्ती बनाने का संकल्प लेकर वे फरवरी १८७६ में भारत आए। दयानन्द के सहजद्वेषी चिपलूणकर को यह प्रसंग कदाचित नहीं भाया तो उसने **'निबन्धमाला'** के पञ्चम वर्ष के अन्तिम अंक में **'वर्षान्तीचा समारोप'** शीर्षक लेख में 'दूरस्थाः पर्वता रम्याः' उपशीर्षक देकर पुनः उपहासपूर्ण शैली में थियोसोफिस्टों के दयानन्द के प्रति आकर्षण को 'दूर के ढोल सुहावने' की संज्ञा देकर उसका अवमूल्यन किया। चिपलूणकर ने जान-बूझकर इस तथ्य को नज़रअंदाज़ किया कि किस प्रकार १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना से लेकर १८७६ तक के चार वर्षों में स्वामी दयानन्द की ख्याति निरन्तर बढ़ी है। इस बीच उन्होंने पंजाब प्रान्त में सर्वत्र भ्रमण कर वैदिक धर्म को व्यापक आयाम दिया और सौराष्ट्र से कलकत्ता तक तथा रावलपिण्डी से महाराष्ट्र के सातारा नगर तक धर्मसुधार एवं समाज संशोधन के लिए सुदृढ़ आधार भूमि बना दी है। अपने विद्वेषी मन को संतुष्ट करने के लिए उसने इस लेख की पाद-टिप्पणी में **'इन्दुप्रकाश'** नामक मराठी पत्र में छपे २३ नवम्बर १८७४ के एक लेख की कुछ पंक्तियां उद्धृत कीं जिनमें स्वामीजी के व्यक्तित्व पर असभ्यतापूर्ण कटु आक्षेप किये गये थे।

विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने **'निबन्धमाला'** के फरवरी १८७७ के अंक में **'वर्षान्ती चा समारोप-३'** शीर्षक एक लेख में पुनः स्वामी दयानन्द का स्मरण किया। यहां भी उनका प्रयोजन मात्र उनका उपहास करना तथा स्वामीजी के महत् आशय को विद्रूपमयी शैली में पेश करना था। १८७६ में मध्व सम्प्रदाय के कोई आचार्य (वे भी मध्वाचार्य ही कहलाते हैं) पूना आए थे। चिपलूणकर को ये आचार्य लब्धप्रतिष्ठ परमहंस (यह व्यंग्य स्वामी दयानन्द के प्रति है) से भिन्न कोटि के लगे और उन्होंने इन वैष्णावाचार्य को

शास्त्रज्ञ तथा यतिधर्म का आचरण करने वाला बताकर उनका अनेकधा स्तुति-पाठ किया।[४४] उस समय इन मध्वाचार्य की अध्यक्षता में बाल विवाह के औचित्यानौचित्य पर एक शास्त्रार्थ आयोजित किया गया था। एतद् विषयक चिपलूणकर की टिप्पणियों को पढ़ने से शास्त्रार्थ का कोई वास्तविक चित्र उभरकर पाठक के सामने नहीं आता। उसे तो चिपलूणकर की कटूक्तियां, वागाडम्बर तथा स्वामी दयानन्द के प्रति परोक्ष कटाक्ष ही दृष्टिगोचर होते हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है-**स्वभावो हि दुरतिक्रमः**। मनुष्य का स्वभाव जीवनपर्यन्त उसका साथ नहीं छोड़ता।

महाराष्ट्र के विचारशील तथा गम्भीर प्रकृति के लोगों ने चिपलूणकर की इन द्वेषपूर्ण आलोचनाओं को कभी अच्छा नहीं माना। मात्र बत्तीस वर्ष की अल्पायु में चिपलूणकर की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उनके छोटे भाई लक्ष्मणराव ने **कैलासवासी विष्णु कृष्ण चिपलूणकर यांचे चरित्र** शीर्षक से उनकी जीवनी लिखी और इसकी भूमिका लिखने के लिए चिपलूणकर के मित्र तथा सहपाठी विष्णु मोरेश्वर महाजनि से निवेदन किया। चिपलूणकर तथा महाजनि यद्यपि सहाध्यायी तथा मित्र थे किन्तु महाजनि को अपने इस मित्र की संकीर्ण विचारधारा से किञ्चित मात्र भी सहानुभूति नहीं थी। महाजनि का स्पष्ट कहना था कि लोकहितवादी (गोपाल हरि देशमुख), जोतीराव फुले तथा स्वामी दयानन्द के विचारों का पूर्वाग्रहमुक्त होकर, गहराई में जाकर अध्ययन न कर चिपलूणकर ने जिस अशालीन भाषा में उनकी धज्जियां उड़ाई हैं और फजीहत की है, उससे समाज की प्रगति अवरुद्ध हुई है। यही कारण था कि महाजनि ने चिपलूणकर के भाई लक्ष्मणराव को १६ जनवरी १८८२ को पत्र लिखकर सूचित कर दिया कि वे उक्त जीवनचरित की भूमिका नहीं लिखेंगे। उन्होंने तो लक्ष्मणराव को यहां तक लिख दिया कि चिपलूणकर के विचारों से उसकी कोई सहानुभूति नहीं है और यह भी लिखा कि उसने तो चिपलूणकर के जीवनकाल में ही **'निबन्धमाला'** में लिखे उसके निन्दा-कुत्सा युक्त, एकपक्षी तथा कटुभाषायुक्त इन निबन्धों का प्रतिवाद किया था।[४५]

महाजनि के अतिरिक्त अन्य विचारशील लोगों ने भी चिपलूणकर की दयानन्द विषयक आलोचना को पसन्द नहीं किया। द.न. गोखले ने अपनी पुस्तक 'विष्णु शास्त्री चिपलूणकर आणि महात्मा जोती बा फुले' नामक एक

लेख में चिपलूणकर की आलोचना को स्वाभाविक ठहराया। गोखले का कहना था कि स्वामी दयानन्द वेद के अतिरिक्त शेष हिन्दू परम्परा, रूढ़ि और संम्प्रदायों पर आक्रमण करते थे, इसलिए हिन्दुओं के मन में अस्थिरता और अपराध बोध पैदा होता था। इसे ही अनिष्टकर मानकर यदि चिपलूणकर ने दयानन्द की आलोचना की तो क्या बुरा किया? किन्तु विचारशील लोग गोखले के इस तर्क से सहमत नहीं थे। तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी ने गोखले के लेख का प्रतिवाद करते हुए लिखा कि 'राम मोहनराय, फुले, स्वामी दयानन्द, आगरकर, न्यायमूति रानडे आदि को इस देशाभिमान अथवा राष्ट्राभिमान का जैसा साक्षात्कार हुआ था वैसा साक्षात्कार चिपलूणकर को नही हुआ था।'[२६] निश्चय ही चिपलूणकर का झुकाव रुढ़िबद्ध परम्परावाद की ओर अधिक था जबकि दयानन्द मिथ्या रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को तोड़ने में विश्वास रखते थे।

पाद टिप्पणियां

१. सेवकलाल कृष्णदास बम्बई के भाटिया वर्ग के थे। स्वामी दयानन्द के प्रति उनकी अविचल निष्ठा थी। बम्बई में आर्यसमाज को सुदृढ़ बनाने में उनका प्रमुख योगदान रहा। ये कई वर्ष बम्बई आर्यसमाज के मंत्री भी रहे।

२. पं. गट्टूलाल यद्यपि नेत्रज्योतिहीन थे किन्तु उनकी स्मरणशक्ति अद्‌भुत थी। वे शतावधानी और आशु कवि थे।

३. पं. रामलाल यद्यपि मूलतः हरयाणा (ग्राम रानी का रायपुर) के निवासी थे, किन्तु इनका अध्ययन बंगाल में न्याय के प्रसिद्ध अध्ययन स्थल नवद्वीप (नदिया) में हुआ था। मूर्तिपूजा के समर्थन में उन्होंने 'मूर्तिप्रकाश' नामक एक पुस्तक लिखी थी।

४. निश्चय ही इस समय अहमदाबाद तथा राजकोट आदि नगरों में प्रार्थनासमाज का बोलबाला था। राव बहादुर भोलानाथ साराभाई, जो स्वयं प्रार्थनासमाज के मुखिया थे, स्वामीजी का इस नगर में स्वागत करने वालों में अग्रणी थे। गोपालराव हरि देशमुख भी तब तक प्रार्थनासमाज के ही सदस्य थे।

५. संसार की प्रथम आर्यसमाज बम्बई के प्रथम मंत्री पानाचंद आनन्दजी पारेख गुजराती थे।

६. महामति महादेव गोविन्द रानडे का एक नाम माधव गोविन्द रानडे भी था। ये चित्त-पावन ब्राह्मण थे तथा स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने के समय प्रार्थनासमाज के सदस्य थे। स्वामी दयानन्द के समाजसुधार के विचारों से उनकी प्रबल सहमति थी।

७. महादेव मोरेश्वर कुण्टे के विशेष परिचय के लिए लेखक की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' द्रष्टव्य है।

८. पूना प्रवचन या उपदेशमंजरी शीर्षक यह ग्रन्थ मेरे द्वारा सम्पादित होकर वैदिक पुस्तकालय अजमेर से दो बार छप चुका है।

९. स्वामी दयानन्द द्वारा बम्बई में प्रदत्त इन व्याख्यानों का सारांश आर्यसमाज बम्बई के पुराने रजिस्टर से पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने प्राप्त कर 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन' शीर्षक ग्रन्थ में प्रकाशित किया है।

१०. बैरिस्टर रामदास छबीलदास पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा के साले तथा सेठ छबीलदास लल्लूभाई के पुत्र थे। जिन श्लोकों में बैरिस्टर रामदास ने पं. व्यंकटेश्वराचार्य को उत्तर दिया, वे उन्हें स्मरण नहीं रहे। निम्न एक श्लोकांश ही उन्हें याद रहा जिसे उन्होंने देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को बताया था-

भीतः कदा नाम मृगेन्द्रशावको
दीनं मुखं वीक्ष्य मृगांगनायाः।।

अर्थात् हरिणी के दीन मुख को देखकर शेर का शावक (बच्चा) कब भय मानता है?

११. डा. कुशलदेव शास्त्री सुभाष कॉलेज नांदेड (महाराष्ट्र) में हिन्दी के प्रवक्ता हैं। उनमें शोधवृत्ति के प्रबल संस्कार हैं। स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज विषयक उनका अनुसंधान कार्य वेदवाणी, परोपकारी आदि पत्रों में प्रकाशित होता रहा है। विशेष रूप से महाराष्ट्र में स्वामी दयानन्द की अवस्थिति तथा मराठी पत्रों में एतद्विषयक उल्लेखों की तलाश कर उन्हें प्रकाश में लाने का उनका कार्य सर्वथा श्लाघनीय है।

१२. स्वामीजी का पुणे आगमन जून १८७५ में हुआ था।

१३. द्रष्टव्य-वेदवाणी नवम्बर १९८३

१४. द्रष्टव्य-वेदवाणी जुलाई १९८६

१५. बटु-ब्रह्मचारी। इस लेख से यह पता नहीं चलता कि यज्ञोपवीत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि की पुत्री को दिया गया था या पुत्र को।

१६. यूरोप में प्रचलित एक नास्तिक सम्प्रदाय

१७. 'शिव-पार्वती सुत' से अभिप्राय गणेश का है। वेदोक्त संस्कार में गणपतिपूजन नहीं होता।

१८. हवन करने से दुर्गन्ध नष्ट होती है। स्वामीजी की इस मान्यता में कोई अनोखापन नहीं है। यह तो विज्ञानसिद्ध तथ्य है कि यज्ञ से उत्पन्न धूम्र अनेक प्रकार की दुर्गन्ध को नष्ट करता है तथा वायुमण्डल का शोधन करता है।

१९. पूर्वपक्षी का यह मात्र कुतर्क है। परमात्मा की उपासना अपने स्थान पर उचित है तो माता, पिता और आचार्य जैसे शरीरधारी देवों की सेवा-पूजा भी मनुष्य का कर्त्तव्य एवं धर्म है।

२०. पादरी नीलकण्ठ शास्त्री (नेहेम्या गोरे) के परिचय के लिए द्रष्टव्य-वेदवाणी, अप्रैल-मई, १९६३

२१. वेदवाणी-मार्च १६६४

२२. प्रासंगिक श्लोक निम्न हैं-(उत्तरकाण्ड सर्ग ६६)
यत्र-यत्र च यातीह रावणो राक्षसेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिंगं, तत्र तत्र च नीयते।।४२
वालुका वेदि मध्येतु लिंगं स्थाप्य स रावणः।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्च्चामृत गंधिभिः।।४३

२३. निश्चय ही कथित श्लोक प्रक्षिप्त हैं। प्रचलित वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण प्रक्षिप्त है। मूल ग्रन्थ युद्धकाण्ड पर समाप्त हो गया है।

२४. प्रार्थनासमाज और ब्रह्मसमाज के सिद्धान्त एक समान थे। प्रार्थनासमाज को ब्रह्मसमाज का महाराष्ट्र संस्करण कहना उपयुक्त है।

२५. म.गो. रानडे, गोपाल हरि देशमुख आदि प्रमुख महाराष्ट्रीय नेता प्रार्थनासमाज से सम्वद्ध थे।

२६. अहमदावाद के भोलानाथ साराभाई तथा अन्य प्रमुख लोग प्रार्थनासमाजी थे तथा स्वामीजी का व्याख्यान भी इस समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर कराया गया था। राजकोट में भी यही स्थिति थी। यहां की प्रार्थनासमाज के मंत्री हरगोविन्ददास द्वारकादास ने इस नगर में आर्यसमाज की स्थापना में रुचि ली। यहां तक कि राजकोट का प्रार्थनासमाज ही आर्यसमाज में रूपान्तरित हो गया।-(महर्षि दयानन्द का जीवनचरित, भाग १, पृ. ३५४, पं. घासीराम द्वारा सम्पादित)

२७. द्रष्टव्य-वेदवाणी, फरवरी-मार्च १६६२

२८. वस्तुतः यह कुछ संकीणमना पौराणिकों का षड्यंत्र ही था जिन्होंने मैजिस्ट्रेट से जाकर कहा कि मोहर्रम का त्यौहार निकट है अतः स्वामीजी के व्याख्यानों से अशान्ति फैलने की सम्भावना है।

२६. थियोसोफिस्टों तथा स्वामी दयानन्द के बीच के इस पत्र-व्यवहार को पं. लेखराम रचित तथा स्वामीजी के अन्य जीवनचरितों में विस्तारपूर्वक उद्धृत किया गया है।

३०. द्रष्टव्य-वेदवाणी, अप्रेल २०००, पृ. १६

३१. उपर्युक्त

३२. इस निवन्ध के हिन्दी अनुवाद को प्रो. कुशलदेव ने वेदवाणी के नवम्वर १६८३ के अंक में समग्र रूप से छपाया है।

३३. स्वामी दयानन्द ने कवीर, तुकाराम आदि निर्गुणी सन्तों के लिए दुर्वचनों का कभी प्रयोग नहीं किया। यह अवश्य लिखा कि ये सन्त शास्त्रज्ञ नहीं थे अन्यथा सत्य-शास्त्रों के प्रति अवहेलना नहीं दिखाते।

३४. चिपलूणकर का यह कटाक्ष भी व्यर्थ है क्योंकि स्वामीजी के जीवन के आरम्भिक वाईस वर्ष तो पिता के घर में ही व्यतीत हुए थे तथापि यह नहीं भूलना चाहिए कि मूलशंकर (दयानन्द) का किशोर मन तो मूर्तिपूजा से लगभग १२-१४ वर्ष की आयु में ही विमुख हो गया था।

३५. दयानन्द और लूथर की तुलना एकांश में ही सत्य है, सर्वांश में नहीं। द्रष्टव्य-पं. मनुदेव अभय का लेख स्वामी दयानन्द और मार्टिन लूथर।

३६. कुर्सी, मेज लगाकर व्याख्यान देना अनुचित कैसे हो गया? देश, काल के अनुसार व्यवस्थाएं बदलती रहती हैं।

३७. दयानन्द ने कभी नये धर्म के प्रवर्त्तन की बात नहीं की। वे उसी धर्म को मानते थे जिसे ब्रह्मा से आरम्भ कर महाभारतकालीन जैमिनि पर्यन्त ऋषि-मुनि मानते आये थे।

३८. मूर्तियों को खण्डित करना स्वामी दयानन्द को कभी अभीष्ट नहीं रहा। वे तो लोगों के मन से जड़पूजा का भाव हटाना चाहते थे।

३९. यज्ञों से पर्यावरण की शुद्धि को डा. (स्वामी) सत्यप्रकाश ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक अग्निहोत्र (१९८५ तृतीय संस्करण) तथा डा. रामप्रकाश ने यज्ञ विमर्श (१९९७) में भलीभांति सिद्ध किया है। दोनों लेखक प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा रसायनशास्त्रज्ञ हैं।

४०. यह आक्षेप स्वामी दयानन्द द्वारा वेदों में विज्ञान के मौलिक सिद्धान्तों की विद्यमानता विषयक धारणा पर किया गया है। वेदों में विज्ञान के सिद्धान्तों का पाया जाना अब एक सर्वस्वीकृत तथ्य बन गया है।

४१. द्रष्टव्य-वेदवाणी, मार्च १९८५

४२. उपर्युक्त

४३. यह सत्य है कि पूना में स्थापित आर्यसमाज दीर्घायु नहीं हुआ। इसके कारणों की पृथक् मीमांसा होनी उचित है।

४४. द्रष्टव्य-वेदवाणी, मार्च १९८५

४५. द्रष्टव्य-वेदवाणी, मार्च १९८९, पृ. ५७

४६. द्रष्टव्य-वेदवाणी, मार्च १९८९, पृ. ३६

अध्याय ६

स्वामी दयानन्द दिल्ली तथा पंजाब में

दिल्ली दरबार में स्वामी दयानन्द की शिरकत

स्वामी दयानन्द के कार्यक्रमों और योजनाओं में राष्ट्रीय एकता की स्थापना करना सर्वप्रमुख था। उन्होंने जिस धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया उसका अन्तिम लक्ष्य भारत देश तथा उसमें निवास करने वाली हिन्दू जाति में एकता, संगठन तथा सौमनस्य के भाव भरना था। १८७७ के जनवरी मास में तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की सम्राज्ञी की पदवी धारण करने के उपलक्ष्य में एक शाही दरबार का आयोजन किया। इस बृहत् सभारम्भ में भारत के राजाओं, नवाबों, बड़े ठिकानेदारों, सेठ-साहूकारों तथा अन्य गण्यमान्य व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया था। यद्यपि स्वामीजी को इस समारोह में आने का कोई औपचारिक निमंत्रण नहीं मिला था, किन्तु यह जानकर कि इस अवसर पर देश के गण्यमान्य व्यक्तियों से मिलना और देशोत्थान विषयक चर्चा हो सकेगी, स्वामी दयानन्द के दिल्ली आने का कार्यक्रम बना लिया। वे अजमेरी गेट के बाहर शेरमल के अनार बाग में ठहरे। उनके साथ स्वामीजी के कुछ भक्त, अनुयायी और शिष्य भी दिल्ली आये थे।[1] कुछ दिन बाद स्वामीजी ने भारत के भावी कल्याण की योजना बनाने और देश के हित के लिए सम्मिलित प्रयास किये जाने के उपाय सुझाने हेतु प्रतिष्ठित व्यक्तियों और सार्वजनिक पुरुषों की एक गोष्ठी अपने निवास पर आयोजित की। इसमें मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, मुंशी इन्द्रमणि, ब्राह्म नेता केशवचन्द्र सेन तथा नवीनचन्द्र राय, सैयद अहमद खां तथा बम्बई के हरिश्चन्द्र चिन्तामणि उपस्थित थे। स्वामीजी का उपस्थित व्यक्तियों से कहना था कि वेद को आधार बनाकर यदि देशोत्थान का कोई कार्यक्रम हम बनाएं तो उसका सफल होना निश्चित है।

स्वामीजी ने तो पारस्परिक सद्भावना तथा हिन्दुओं के विभिन्न मत-सम्प्रदायों द्वारा वेद के प्रति एकान्त आस्था के विचार को ध्यान में रखकर ही यह प्रस्ताव रखा था किन्तु इसका उक्त महानुभावों द्वारा सर्वानुमति से स्वीकार किया जाना कठिन था। ब्राह्म मत के नेता वेदों को ईश्वरोक्त तथा स्वतः प्रमाण मानने से इन्कार कर चुके थे। इस्लाम के अनुयायी सैयद अहमद द्वारा ऐसे किसी विचार से सहमत होना असम्भव था। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में दिल्ली में आयोजित इस धर्मसभा की चर्चा हुई थी। अंग्रेजी पत्र **'इण्डियन पब्लिक ओपिनियन'** ने अपने **'इम्पीरियल एसेम्बलेज'** शीर्षक बुलेटिन में यह समाचार छापा था कि मूर्तिभंजक दयानन्द सरस्वती इस समय शेरमल के बाग में विराजमान हैं।

नवीनचन्द्र राय द्वारा सम्पादित **'ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका'** ने जनवरी १८८५ के अंक में (दिल्ली दरबार के आठ वर्ष बाद) लिखा कि स्वामीजी ने हम सब उपस्थित जनों से अनुरोध किया था कि हम सब लोग एकमत होकर एक ही रीति से देश का सुधार करें तो इसमें शीघ्र सफलता मिल सकती है। निष्कर्षतः राय महाशय ने लिखा कि मूल विश्वास (वेदों के प्रति आस्था) में उनके साथ हमारे मतभेद थे, इसलिए इच्छित एकता नहीं हो सकी। लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र **'बिरादर-ए-हिन्द'** ने जनवरी १८७७ के अंक में लिखा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के निवास पर दिल्ली में एक सभा हुई। इसका ध्येय भारत में एकता की स्थापना तथा जाति के सुधार की कोई योजना बनाना था। इसमें ब्राह्म नेता केशवचन्द्र सेन भी उपस्थित थे। कलकत्ता के **'इण्डियन मिरर'** ने भी उक्त धर्म सभा के स्वामीजी द्वारा आयोजित करने का उल्लेख करते हुए लिखा कि यदि भारत के वर्तमान सुधारकों के बीच वास्तविक और व्यावहारिक एकता स्थापित हो जावे तो इसके शुभ और हितकारी परिणाम निकलेंगे। (**इण्डियन मिरर** १४ जनवरी १८७७ रविवारीय)

दिल्ली दरबार का वृत्तान्त मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने अपने पत्र **'नीतिप्रकाश'** में लिखा। स्वामीजी से अपनी भेंट (प्रथम) का उल्लेख करने के पश्चात् अलखधारी ने लिखा कि उन्होंने अपनी निम्न पुस्तकें मुझको भेंट कीं-सत्यार्थप्रकाश, वेद-विरुद्धमत-खण्डन, पञ्चमहायज्ञ-विधि तथा आर्याभिविनय। (**नीतिप्रकाश** जनवरी १८७७)

दिल्ली से विदा होकर स्वामी दयानन्द मेरठ, सहारनपुर, शाहजहांपुर होते हुए इसी जनपद के एक ग्राम चांदापुर में पहुंचे। यहां वे एक कबीरपन्थी कायस्थ मुन्शी प्यारेलाल के निमंत्रण पर आए थे। इन्होंने एक धर्म मेले का आयोजन किया था। इस मेले में ईसाई पादरियों, मुसलमान मौलवियों तथा स्वामी दयानन्द को आमंत्रित किया गया था। इस धर्मसभा में इस बात पर विचार होना था कि सत्य ईश्वरीय धर्म कौनसा है? इस धर्म समागम में पादरी टी.जे. स्काट तथा इस्लाम के प्रतिनिधि रूप में देवबंद (जिला सहारनपुर) के दारूल उलूम से सम्बद्ध मौलवी मोहम्मद कासिम उपस्थित थे। वैदिक धर्म के प्रतिनिधि स्वामी दयानन्द थे और उनके अनुरोध पर मुंशी इंद्रमणि भी आमंत्रित थे।

स्वरचित वेद भाष्य तथा आर्यसमाज के २८ नियमों के विषय में प्रचारार्थ एक विज्ञापन स्वामी दयानन्द ने विभिन्न पत्रों में समालोचनार्थ तथा सर्वसाधारण की सूचना के लिए भेजा था। **'बिरादर-ए-हिन्द'** (अपर नाम **हिन्दू बांधव**) ने इसकी समीक्षा अपने फरवरी १८७७ के अंक में छापी। पत्र का कहना था कि दयानन्द कृत वेद भाष्य प्रति मास लाजरस प्रेस बनारस से छपकर ग्राहकों को भेजा जाता है। यह भाष्य हिन्दी तथा संस्कृत में छपता है तथा इसका वार्षिक मूल्य साढ़े चार रुपया है।

'इण्डियन मिरर' ने फरवरी १८७७ के अंक में इस विषय पर लिखा कि यदि पं. दयानन्द सरस्वती जैसा बड़ा विद्वान् वेदभाष्य करे तो यह अमूल्य तथा सम्मान के योग्य कार्य होगा। इसे मासिकपत्र के रूप में छापा जा रहा है। इच्छा रखने वाला व्यक्ति लाजरस प्रेस बनारस से इसे मंगा सकता है।

स्वामी दयानन्द पंजाब में

स्वामी दयानन्द को पंजाब आने का निमंत्रण तो उसी समय मिल गया था जब वे दिल्ली दरबार में गये थे। ३१ मार्च १८७७ को वे लुधियाना पहुंचे और १ अप्रैल १८७७ को उन्होंने पंजाब की धरती पर पहला व्याख्यान लुधियाना में दिया जो मुंशी जटमल खजांची की कोठी में हुआ। स्वामीजी के पंजाब प्रवास का विवरण इस प्रान्त के अनेक पत्रों में छपा। ये पत्र मुख्यतः उर्दू के थे। पंजाब में उस समय उर्दू का ही चलन था। क्या हिन्दू और क्या

मुसलमान, सब उर्दू पढ़ते थे। उर्दू शिक्षा का भी माध्यम था तथा सरकारी दफ्तरों में सर्वत्र उर्दू या अंग्रेजी का बोलबाला था। उर्दू पत्र **'नूर अफशां'** ने अपने ५ अप्रैल १८७७ के अंक में स्वामीजी के लुधियाना में दिये गये प्रथम व्याख्यान का विवरण छापा। इसमें इस बात का विशेष उल्लेख था कि व्याख्यानदाता पण्डितजी केवल एक सृष्टिकर्ता परमात्मा की उपासना पर जोर देते हैं तथा वे हिन्दुओं की प्रचलित रीतियों में सुधार लाने के लिए उद्यत हैं। **'नूर अफशां'** साप्ताहिक पत्र था। १२ अप्रैल १८७७ के अंक में उसने स्वामीजी के ६ अप्रैल को दिये गये व्याख्यान की चर्चा की। यह व्याख्यान भी मुंशी जटमल के निवास पर हुआ था। १६ अप्रैल १८७७ के **'नूर अफशां'** ने लिखा "दयानन्द के लिए उचित है कि वे ईसाइयों और मुसलमानों के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करें जिससे कि वे इनके मत के बारे में अपनी धारणा बना सकें।"

स्वामीजी के लुधियाना से लाहौर आने की सूचना **'बिरादर-ए-हिन्द'** ने दी जिसने लिखा कि १६ अप्रैल १८७७ को सायं स्वामीजी लाहौर आये। जब स्वामीजी लाहौर आये तो पंजाब सरकार के भूतपूर्व मीरमुंशी पं. मनफूल तथा क़ोहेनूर पत्र और प्रेस के स्वामी मुंशी हरसुखराय भटनागर[1] उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन पर मौज़ूद थे। **'कोहेनूर'** ने २८ अप्रैल १८७५ के अंक में लिखा, "वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् दयानन्द सरस्वती लाहौर में रतनचंद (दाढ़ी वाले) के बाग में उतरे हैं। उनका सत्य धर्म (वेदोक्त धर्म) पर एक व्याख्यान बावली साहब में हुआ है।" इस अंक में स्वामीजी द्वारा व्याख्यान में कही गई बातों को विस्तारपूर्वक उल्लिखित किया गया तथा लिखा कि वेदों में प्रतिपादित ईश्वर के स्वरूप, वेदों में विद्यमान पदार्थ विद्या, वेदों में ज्ञान, कर्म और उपासना का विवेचन, यज्ञ का प्रयोजन, वेदों के पढ़ने का सबको सार्वत्रिक अधिकार जैसे विषयों का विवेचन विद्वान् वक्ता ने इस व्याख्यान में किया था।

'कोहेनूर' में आगे भी स्वामीजी के लाहौर प्रवास की घटनाएं छपती रहीं। ५ मई १८७७ के अंक में इस पत्र ने स्वामीजी के अनारकली बाजार में स्थित डा. रहीमखां की कोठी में ठहरने की खबर छापी। उसने यह भी लिखा कि स्वामीजी के विचारों को सुनकर नगर में दो दल बन गये हैं। एक

दल उन लोगों का है जो स्वामीजी के उपदेशों को लाभप्रद मानते हैं जबकि दूसरे लोग उनका विरोध करते हैं। पत्र के विचार से स्वामीजी के समर्थकों की संख्या बढ़ रही है। पुनः १२ मई १८७७ के अंक में लिखा गया कि स्वामीजी के विचारों को सुनकर पुराणपन्थी ब्राह्मणों में हलचल मच गई है। धीरे-धीरे स्वामीजी के विरोधी ब्राह्मणों ने भी मोर्चा खोला। इस मोर्चे के मुखिया पं. श्रद्धाराम फिलौरी[3], पं. भानुदत्त तथा पं. हरप्रसाद थे। इन लोगों ने मूर्तिपूजा के मण्डन में व्याख्यानों का सिलसिला चलाया। १६ मई १८७७ के 'कोहेनूर' ने लिखा कि स्वामीजी के व्याख्यानों से लाहौर के ब्राह्मण समुदाय में यह आशंका फैल गई है कि इस संन्यासी के उपदेशों से ब्राह्मणों की जीविका के चले जाने की सम्भावना है।

लाहौर में दिये गये स्वामीजी के व्याख्यानों का पौराणिक समुदाय पर चमत्कारी असर हो रहा था। मूर्तिपूजा के प्रति लोगों की श्रद्धा घटने लगी। इनमें एक लाला बालकराम थे। मूर्तिपूजा से उनकी विरक्ति तो इस सीमा तक पहुंच गई कि उन्होंने अपने देवताओं की मूर्तियों को चौकी सहित सरे आम बाज़ार में फेंक दिया। यह वृत्तान्त १६ जून १८७७ के 'कोहेनूर' अंक में छपा। अन्ततः आर्यसमाज की स्थापना लाहौर नगर में हो गई। 'कोहेनूर' के २८ जुलाई १८७७ के अंक में 'नियाज़ एम. ए. शुभचिन्तक आर्य धर्म' का एक लेख छपा जिसमें यह सूचना दी गई थी कि ''स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर २४ जून १८७७ को यहां आर्यसमाज की स्थापना हो गई है।'' लेखक ने स्वामीजी का आभार व्यक्त करते हुए लिखा कि उनकी महती कृपा से आर्यावर्त्त के उद्धार का यह अवसर आ गया है।

लाहौर से स्वामीजी अमृतसर, गुरदासपुर तथा जालंधर गये। इन नगरों की यात्रा के पश्चात् उनके पुनः लाहौर लौटने का उल्लेख 'कोहेनूर' ने अपने ३ नवम्बर १८७७ के अंक में किया और लिखा कि दशहरे के एक दिन बाद दयानन्द सरस्वती पुनः लाहौर आये हैं और नवाब रज़ा अली खां के बाग में ठहरे हैं। इस बार वे दस दिन लाहौर रहे और वहां से २६ नवम्बर को फीरोजपुर चले गये। इसका उल्लेख 'कोहेनूर' ने १० नवम्बर १८७७ के अंक में किया। पंजाब के अन्य नगरों में जाने तथा वहां दिये गये व्याख्यानों का उल्लेख 'कोहेनूर' के अंकों में नियमित रूप से छपता रहा।

पाद टिप्पणियां

१. स्वामी दयानन्द को लाहौर आमंत्रित करने वालों में ये प्रमुख थे।

२. डा. रहीम खां के परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' द्रष्टव्य है।

३. पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (१८३७-१८८१) लुधियाने के निकट के फिल्लौर कस्बे के निवासी थे। ये अपने आपको सनातन धर्म का प्रवक्ता मानते थे किन्तु वस्तुतः वे नास्तिक थे, जैसा कि उनकी प्रमुख पुस्तक 'सत्यामृत प्रवाह' के पढ़ने से विदित होता है। यों तो इन्होंने स्वामी दयानन्द का विरोध लाहौर तथा हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर किया, किन्तु एक पत्र में उन्होंने स्वामीजी से अपने कृत्यों को लेकर पश्चाताप भी प्रकट किया। देखें-स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. १०८

४. पं. भानुदत्त लाहौर की सत्यसभा के सदस्य थे। यह सभा धार्मिक विचारों में उदार तथा सामाजिक सुधारों की समर्थक थी।

५. आर्यसमाज के इन दस नियमों को प्रथम बार आर्यसमाज लाहौर की अन्तरंगसभा ने न्यू मेडिकल हाल प्रेस दशाश्वमेध घाट बनारस से मुद्रित करवाकर सं. १९३४ वि. (१८७८ ई.) में प्रकाशित कराया। इसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन में तथा दूसरी इस लेखक के पास है।

६. यहां स्वामीजी को प्राचीन दुर्वासा ऋषि तुल्य बताने में एक गूढ़ रहस्य है। पुराणों में जहां-जहां दुर्वासा का उल्लेख मिलता है वहां यह कहा गया है कि वे जहां जाते थे, उनके सैंकड़ों शिष्य उनके साथ रहते थे। यहां ब्राह्म मन्दिर में स्वामीजी अपने दो-तीन सौ अनुयायियों के साथ गये थे। इसी कारण उन्हें 'प्राचीन दुर्वासा' के तुल्य बताया गया।

७. स्वामी सत्यानन्द लिखित दयानन्द प्रकाश में इनका नाम जामसन जी बताया गया है, हमें यह नाम उपयुक्त लगता है।

८. अन्त में स्वामी दयानन्द के प्रति भारतेन्दु के विचारों में पर्याप्त बदलाव आ गया था। निधन के पश्चात् 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' शीर्षक निबन्ध में भारतेन्दु ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना लोकतंत्र के आधार पर की थी। इस व्यवस्था में आर्यसमाज के सदस्यों को ही किसी विषय पर मतामत प्रकट करने का अधिकार दिया गया था। ८ मई १८७८ को आर्यसमाज लाहौर की अंतरंग सभा की बैठक के समय स्वामीजी भी सभा-स्थल पर उपस्थित थे। सदस्यों ने जव उन्हें अन्तरंग सभा के सामयिक प्रधान के रूप में कार्रवाई का संचालन करने की प्रार्थना की तो स्वामीजी ने इससे इंकार करते हुए कहा कि जब अन्तरंग के निर्वाचित प्रधान उपस्थित हैं तो मैं उनके अधिकार का अतिक्रमण कर यह पद कैसे ले सकता हूँ? लोकतंत्र में उनकी इस निष्ठा को **'कोहेनूर'** पत्र ने विशेष रूप से उल्लिखित किया।

लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र **'बिरादर-ए-हिन्द'** ने भी स्वामीजी के पंजाब प्रवास का वर्णन अपने विभिन्न अंकों में किया। १ जून १६७७ के **'बिरादर-ए-हिन्द'** ने लिखा कि आर्यसमाज लाहौर के सभासद बाबू शारदाप्रसाद ने स्वामीजी से प्रार्थना की थी उसे **'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे'** इस श्रुति के अर्थ को लेकर शंका है। स्वामीजी ने मंत्र का वास्तविक अर्थ बताकर प्रश्नकर्त्ता का समुचित समाधान किया। १ जुलाई १८७७ के **'बिरादर-ए-हिन्द'** ने स्वामीजी के व्यक्तित्व और विचारों का विश्लेषण करते हुए लिखा, **"वे अत्यन्त उदार तथा प्रगतिशील विचारों के धनी हैं। उनमें राष्ट्रीय सहानुभूति है तथा वे राष्ट्र के सुधार के प्रति उत्साह रखते हैं। धार्मिक सुधार के साथ-साथ वे देशवासियों के सामाजिक सुधार में भी रुचि रखते हैं। बाल्यावस्था के विवाह का विरोध तथा नारी शिक्षा का समर्थन उनके सुधार कार्य के महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं।"**

लुधियाना से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र **'नूर अफशां'** ने १ नवम्बर १८७७ के अंक में एक हिन्दुस्तानी पादरी पी.एम. मुकर्जी द्वारा मुंगेर में दिये गये किसी व्याख्यान की चर्चा करते हुए लिखा कि इस समय पंजाब में पण्डित दयानन्द सरस्वती वहां के हिन्दुओं को सच्चे वैदिक मार्ग पर चलने की शिक्षा दे रहे हैं।

लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र **'अख़बार-ए-आम'** ने अपने २ मई १८७७ के अंक में लिखा, "एक सप्ताह से स्वामी दयानन्द इस नगर में विराजमान हैं। वे अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि हैं तथा आज भारत में उनसे अधिक

वेदों का जानकार कोई अन्य नहीं है। उनकी दृष्टि में ब्राह्मणादि वर्णों की व्याख्या उनके गुण-कर्मों के आधार पर की जानी उचित है। वे विधवा विवाह के समर्थक हैं तथा कम आयु में विवाह के विरोधी हैं। यद्यपि कुछ पुराने विचारों के ब्राह्मण उनके विरोधी हो गये हैं किन्तु स्वामीजी को इस बात की कोई चिन्ता नहीं है।" लुधियाना निवासी मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने अपने मासिक पत्र **'नीतिप्रकाश'** के २४ मई १८७७ में लिखा, "जब स्वामीजी लुधियाना थे तो उनके और मेरे विरोधी कहते थे कि जैसा कन्हैयालाल धर्महीन है वैसे ही उसके मित्र स्वामी दयानन्द। पादरियों की ओर से हिन्दुओं को पथभ्रष्ट करने के लिए कन्हैयालाल के बुलावे पर वे यहाँ (लुधियाना) आए हैं।" स्पष्ट है कि स्वामीजी के विचार पुराणपन्थियों को पसन्द नहीं आए थे और वे उन्हें ईसाइयों का एजेण्ट कहकर बदनाम कर रहे थे। मुंशी अलखधारी ने इस आक्षेप का कड़ा नोटिस लेते हुए आक्षेपकर्त्ताओं को लतेड़ा और कहा कि "भारत की उन्नति के इच्छुक लोगों को सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की उपासना का प्रचार करने वाले स्वामीजी की बात गम्भीरता से सुननी चाहिए।"

लाहौर से पंजाब ब्रह्मसमाज का अंग्रेजी पत्र **'The Brahmo'** (दि ब्राह्मो) प्रकाशित होता था। इसके संवाददाता ने स्वामीजी के लाहौर में प्रदत्त व्याख्यानों को सुनकर तथा पण्डितों से हुई उनकी शास्त्र-चर्चा को जानने के पश्चात् (खण्ड ३, पृ. १८२-१८६) लिखा-"लाहौर में स्वामीजी पहले तो रतनचंद दाढ़ीवाले के बाग में ठहरे। चार दिन बाद उनके व्याख्यान बावली साहब में होने लगे। यहां उनके व्याख्यानों में कट्टरपन्थियों ने हो-हल्ला मचाया तथा बेहूदापन दिखाया। इस उपद्रव से बचने के लिए ब्राह्ममन्दिर में उनके व्याख्यान कराये गये। इस बीच पौराणिक पण्डितों के बहकावे में आकर रतनचंद दाढीवाले के बाग के स्वामी दीवान भगवानदास ने स्वामीजी को दाढ़ीवाले के बाग की कोठी से चले जाने को कहा। तब उनके निवास की तत्काल व्यवस्था खान बहादुर रहीमखां की नई कोठी में कर दी गई।" पत्र सम्पादक ने इस कार्य के लिए डा.रहीमखां के सौजन्य और उदारता की सराहना करते हुए लिखा कि इस कृपा के लिए स्वामीजी के शुभचिन्तक खान साहब के सदा आभारी रहेंगे।

लाहौर के पं. भानुदत्त[४] जो पहले स्वामीजी के द्वारा किये जाने वाले मूर्तिपूजा-खण्डन के समर्थक बन गये थे, अब अपने सहयोगी पण्डितों की आलोचना से घबरा कर पुनः पौराणिक खेमे में चले गए। इस पत्र ने स्वामीजी के विचारों, सिद्धान्तों तथा कार्यों तथा ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों से उनके विचारों की समानता तथा विरोध पर आगे के अंक में लिखने की बात कही।

लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना २४ जून १८७७ रविवार को हुई थी। कालान्तर में यह विचार हुआ कि बम्बई में निर्धारित आर्यसमाज के २८ नियमों में चूँकि आर्यधर्म के मौलिक सिद्धान्तों तथा संगठन एवं व्यवस्था सम्बन्धी नियमों का एक साथ समावेश कर दिया गया है इसलिए आर्यसमाज के सार्वभौम नियमों को व्यवस्था और संगठन विषयक उन नियमों से पृथक् सूत्रबद्ध करना चाहिए जो समय-समय पर परिस्थिति के अनुसार बदले जा सकते हैं, जबकि आर्य सिद्धान्तों को सूचित करने वाले नियमों को अपरिवर्तनीय समझना चाहिए। इसके बाद लाहौर में ही आर्यसमाज के दस नियमों को पृथकशः निर्धारित किया गया। इन दस नियमों को उर्दू पत्र **'ख़ैरख्वाह'** तथा **'स्टार ऑफ इण्डिया'** (खण्ड १२ संख्या १७) स्यालकोट ने उद्धृत किया।[५]

लाहौर के ब्रह्मसमाज से स्वामी दयानन्द और उस नगर के आर्यसमाजियों के सम्बन्ध, विचारों की बहुत कुछ समानता के कारण अच्छे थे। जब २८ अक्टूबर १८७७ को ब्रह्मसमाज लाहौर ने अपना वार्षिकोत्सव मनाया तो उसमें स्वामीजी ने अपने दो-तीन सौ अनुयायियों के साथ भाग लिया। इसके बारे में कलकत्ता के **'इण्डियन मिरर'** ने २८ अक्टूबर १८७७ के रविवारीय संस्करण में लिखा, "हमको सूचना मिली है कि लाहौर ब्रह्मसमाज के गत वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रार्थना हो जाने के पश्चात् पण्डित दयानन्द सरस्वती प्राचीन दुर्वासा ऋषि[६] के समान दो-तीन सौ अनुयायियों के साथ ब्राह्ममंदिर में पधारे।"

मासिक **'बिरादर-ए-हिन्द'** ने भी अपने नवम्बर १८७७ के अंक में ब्रह्मसमाज के उत्सव में स्वामी दयानन्द के सम्मिलित होने की चर्चा की। इस प्रसंग में पत्र ने लिखा, "कलकत्ता से आये ब्राह्म प्रचारक अघोरनाथ गुप्त ने उपासना कराई और उपदेश दिया। तत्पश्चात् भजन, स्तुति तथा ध्यान का कार्यक्रम चला। ध्यान की समाप्ति के समय पण्डित दयानन्द सरस्वतीजी भी

डेढ़-दो सौ अनुयायियों सहित (ब्राह्म) मन्दिर में आकर उत्सव में सम्मिलित हुए।"

स्वामी दयानन्द अमृतसर में

सिखों की इस पवित्र नगरी में स्वामीजी का प्रथम बार आगमन ५ जुलाई १८७७ को हुआ। जब यहां के अंग्रेज कमिश्नर मि. एच. परकिंस स्वामीजी से मिले तो उन्होंने पूछा, "आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं?" उत्तर में स्वामीजी ने कहा, **"हम केवल यह चाहते हैं कि सब लोग पवित्र वेद की आज्ञा का पालन करें और केवल निराकार, अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें। शुभ गुणों को धारण करें और अवगुणों को त्याग दें।"**

शाहजहांपुर के **'आर्यदर्पण'** (खण्ड ३ संख्या २) में उक्त विवरण छपा था। दूसरी बार इस नगर में स्वामीजी का आगमन १५ मई १८७८ को हुआ और वे ११ जुलाई १८७८ तक यहां रहे। इस बार पौराणिक पण्डितों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने की बात चलाई तो निश्चय हुआ कि १८ जून १८७८ को सायंकाल सरदार भगवानसिंह के तबेले में शास्त्रार्थ होगा। शास्त्रार्थ की सारी तैयारियां की गईं। पर्याप्त प्रतीक्षा के बाद कुछ पण्डित आये और परस्पर बातचीत चल ही रही थी कि विघ्नतोषी उपद्रवकारियों ने पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। एक टुकड़ा स्वामीजी पर भी फेंका गया किन्तु लोगों ने उन्हें घेर रखा था इसलिए चोट नहीं लगी। इस प्रकार इस कोलाहल और गड़बड़ी के बीच सभा समाप्त हो गई। **'आर्यदर्पण'** में आर्यसमाज अमृतसर के मंत्री बाबा नारायणसिंह ने इस सब वृत्तान्त को जुलाई १८७८ के अंक में प्रकाशित करवाया और पाठकों से निवेदन किया कि यह सारा वृत्तान्त तो मैंने लिख दिया है। अब आप लोग स्वयं इस पर विचार कर लें।

पंजाब के विभिन्न स्थानों में जाने के समाचार तत्कालीन पत्रों में छपते थे। यथा-स्वामीजी के २६ अक्टूबर १८७७ को फीरोजपुर आने का समाचार **'कोहेनूर'** ने ३ नवम्बर १८७७ के अंक में छापा। इसी पत्र ने लिखा कि रावलपिण्डी के लोगों की प्रार्थना पर स्वामी दयानन्द ७ नवम्बर १८७७ को वहां आए। **बिहारबन्धु** ने भी ५ दिसम्बर १८७७ के अंक में उनके

रावलपिण्डी पहुंचने के समाचार को प्रकाशित किया। १४ नवम्बर १८७७ के **'कोहेनूर'** ने लिखा कि रावलपिण्डी में स्वामीजी पारसी सौदागर जामास्पजी[७] की कोठी में ठहरे हैं। इसी पत्र ने २३ फरवरी १८७८ के अंक में स्वामीजी के गुजरांवाला आकर सरदार महासिंह की समाधि के बाग में ठहरने की सूचना छापी और लिखा कि सायं छः बजे से आठ बजे तक उनके नियमित व्याख्यान यहां होते हैं। मुलतान में उनके व्याख्यानों की सूचना **'कोहेनूर'** ने २३ मार्च १८७८ के अंक में छापी और उन्हें वहां उपदेशों में संलग्न बताया।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक और गद्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रारम्भ में तो स्वामी दयानन्द के विचारों के विरोधी थे किन्तु ज्यों-ज्यों वे स्वामीजी के धर्मसुधार तथा देशहित के विचारों और कार्यक्रमों से परिचित हुए, उनकी धारणा में परिवर्तन होता गया। १८७८ ई. तक आते-आते उन्होंने अनुभव किया कि स्वामीजी दयानन्द जो कुछ कहते हैं, वह बुद्धिपूर्वक होता है तथा उनके उपदेश धर्म एवं समाज के सुधार की भावना से प्रेरित हैं। अपने पत्र **'कवि वचन सुधा'** के १७ जून १८७८ के अंक में उन्होंने स्वामीजी के अमृतसर प्रवास को लक्ष्य बनाकर प्रारम्भ में व्यंग्यशैली में लिखा कि "पंजाब देश के अधिकांश लोग संस्कृत शास्त्रों से अनभिज्ञ हैं। ऐसे लोगों पर दयानन्द के विचारों का अधिक प्रभाव पड़ता है। वे विधवा विवाह का समर्थन करते हैं, इन्द्रादि को देवता न मानकर विद्वान् पुरुष बतलाते हैं तथा चाण्डाल तक को वेदाध्ययन का अधिकारी सिद्ध करते हैं। वे प्रतिमापूजन, ठाकुरद्वारे और शिवालय की प्रतिष्ठा को असत्कर्म कहते हैं किन्तु **जो कुछ कहते हैं बुद्धिपूर्वक युक्ति से कहते हैं।**" भारतेन्दु को इस बात का दुःख था कि सनातनधर्मानुयायी ब्राह्मण और संन्यासी स्वयं को चाहे सरस्वती का अवतार ही क्यों न मानें, उनमें कोई ऐसा नहीं है जो चारों वेदों का अर्थ करने में पारंगत हो, वेदों का शुद्ध अर्थ करने का सामर्थ्य रखता हो तथा प्रतिपक्षियों के आक्षेपों का खण्डन करने में समर्थ हो। इस वक्तव्य से पता चलता है कि स्वामी दयानन्द के विचारों और कार्यों से निरन्तर परिचित होने के कारण भारतेन्दु के उनके प्रति रुख में नरमी आने लगी थी[८] साथ ही कथित सनातनधर्मी आचार्यों की अकर्मण्यता तथा धर्म के रक्षण में उनकी अरुचि को देखकर वे उनसे असन्तुष्ट हो चले थे।

अध्याय १०

स्वामी दयानन्द पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में

(क) १८७९ के हरिद्वार के कुम्भ में

कुम्भ के महामेले में स्वामी दयानन्द धर्म प्रचारार्थ प्रायः जाते थे। वे जानते थे कि ऐसे पर्वों पर लाखों की संख्या में नर-नारी एकत्र होते हैं और उनको धर्मोपदेश देना लाभप्रद होता है। संन्यास धारण करने के पश्चात् जब उन्होंने स्वप्रान्त गुजरात को छोड़ा तो वे सीधे १८५५ ई. के हरिद्वारीय कुम्भ में पहुंचे थे यद्यपि अभी तक न तो उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया था और न उनका अध्ययन और साधना ही पूरी हुई थी।[1] वर्ष १८७९ के कुम्भ में जब वे पुनः हरिद्वार आये तब तक उनकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी। यहां उन्होंने मूला मिस्त्री के बाग में अपना निवास नियत किया। इस कुम्भ पर एकत्र लोगों तथा इस अवसर पर होने वाली धर्म चर्चा का तत्कालीन पत्रों ने उल्लेख किया है।

लाहौर से प्रकाशित उर्दू पत्र **'कोहेनूर'** ने १६ अप्रैल १८७९ के अंक में लिखा था कि इस बार कुम्भ में लोगों की भीड़ पूर्वापेक्षा अधिक है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी आदि विद्वानों के परस्पर वाद-विवाद को लोग सुनने आते हैं। पं. श्रद्धाराम तो स्वामीजी के प्रत्यक्ष विरोधी थे। इससे पहले लाहौर में वे स्वामीजी के धर्मप्रचार में बाधा पहुँचा चुके थे। इस कुम्भ में भी वे स्वामीजी को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती देने से बाज़ नहीं आए, किन्तु स्वामी विशुद्धानन्द ने स्वामीजी को पत्र लिखकर संकेत दे दिया था कि आपको जो लोग शास्त्रार्थ के लिए अपने स्थान पर बुला रहे हैं, विद्वता और योग्यता में वे आपके पास बैठने के भी योग्य नहीं हैं। आप इनके स्थान पर न जाएं क्योंकि इनका उद्देश्य शास्त्रार्थ न कर आपको शारीरिक हानि पहुंचाना

है। स्वामीजी को इस बात का भय नहीं था कि कोई उन्हें शारीरिक क्षति पहुंचाता है। किन्तु उन्हें इस बात की अवश्य चिन्ता थी कि जन-कल्याण का जो महत् अनुष्ठान उन्होंने आरम्भ किया है वह असमय में शरीर त्यागने से अधूरा रह जाएगा। जब सनातनी शिविर स्वामीजी को अपने धर्मोपदेश के कार्य से विरत नहीं कर सका तो उसने उन्हें बदनाम करने की एक अन्य चाल चली। उन्होंने मेले में उपस्थित जनता में यह खबर फैला दी कि दयानन्द नास्तिक हैं और जो उसके उपदेश सुनने उसके डेरे में जाएगा, वह धर्मपतित माना जाएगा तथा प्रायश्चित किये बिना उसे समाज में पुनः स्थान नहीं मिलेगा।

पं. श्रद्धाराम ने अपनी इस कार्यवाही को खुद समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा। **'कोहेनूर'** के सम्पादक मुंशी हरसुखराय को एक पत्र लिखकर उसने सूचित किया कि स्वामी दयानन्द के विरुद्ध उसने एक विज्ञापन तैयार कर मेले में सर्वत्र चिपकाया है जिसमें लिखा है कि जो व्यक्ति दयानन्द का उपदेश सुनेगा वह पतित माना जाएगा। पं. श्रद्धाराम का यह पत्र १६ अप्रैल १८७६ के **'कोहेनूर'** प्रकाशित हुआ। इस पत्र में स्पष्ट किया गया था कि स्वामी दयानन्द को हम तीन लोगों (स्वयं श्रद्धाराम, पं. चतुर्भज अलीगढ़वासी तथा पं. गिरधारीलाल अमृतसरी) ने स्वहस्ताक्षरों से शास्त्रार्थ तथा शंका समाधान के लिए आहूत किया। साथ ही यह भी लिखा कि हमारी सभा में ऐसे बारह लोगों ने हाथ जोड़कर कबूल किया कि दयानन्द की सभा में जाने के कारण वे पतित हो गये हैं, अतः उन्हें प्रायश्चितपूर्वक पुनः हिन्दू धर्म में मिला लिया जाए। पं. श्रद्धाराम ने इस पत्र में इन बारह लोगों द्वारा तीन दिन का व्रत रखने और गंगा स्नान के अनन्तर दक्ष प्रजापति के मन्दिर के दर्शन कर शुद्ध होने की बात लिखी।

वस्तुतः पं. श्रद्धाराम स्वामीजी को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानता था क्योंकि स्वामीजी के विचारों का पंजाब की जनता पर जिस तीव्र गति से प्रभाव पड़ा था, उससे उसे लगने लगा कि यह प्रान्त पौराणिक मत के प्रभाव से मुक्त होकर वैदिक धर्म को शीघ्रता से अपना रहा है। इसीलिए उसने कुम्भ में स्वामीजी के विरुद्ध अभियान चलाया और कई साधु-संन्यासियों और पण्डितों को एकत्र कर स्वामीजी का व्यूहबद्ध विरोध किया। **'विद्या प्रकाश'** पत्र के

जून १८७६ के अंक में **'धर्म चर्चा'** शीर्षक एक नोट छपा था। इसमें पं. गोपाल शास्त्री का एक बयान उद्धृत किया गया है। इस व्यक्ति ने यह स्वीकार किया कि पं. श्रद्धाराम ने कुछ साधुओं को बहकाकर स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनने रूपी पाप का प्रायश्चित करवाने का आडम्बर किया। पं. गोपाल शास्त्री भी इस कार्य में श्रद्धाराम का सहयोगी बना था, किन्तु बाद में उसने यह अनुभव किया कि श्रद्धाराम जैसे धूर्त का साथ देकर उसने अनुचित कार्य किया है। पं. गोपालशास्त्री की यह स्वीकारोक्ति श्रद्धाराम के छल प्रपञ्च का पर्दाफाश कर देती है। जिन लोगों ने हरिद्वार में कथित प्रायश्चित किया वे वस्तुतः स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुनने कभी गये ही नहीं थे।

हरिद्वार में स्वामीजी का विरोध करने वाले पं. श्रद्धाराम के छल-छिद्रपूर्ण आचरण की कलई तब खुल गई जब **'आर्यदर्पण'** (शाहजहांपुर) ने अपने जून १८७६ के अंक में 'आर्यसमाज का एक सभासद' के नाम से 'पं. श्रद्धाराम साहब कौन है और 'कोहेनूर' में छपे उनके वक्तव्य की शुद्धि' शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया। इस लेखक ने श्रद्धाराम को स्वदेश प्रेमी लोगों का शत्रु करार दिया तथा इस तथ्य को प्रकाशित किया कि यह साधारण मूर्तिपूजक व्यक्ति पंजाब के प्रखर धर्मसुधारक मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी तथा पंजाब ब्रह्मसमाज के नेता बाबू नवीनचन्द्र राय से व्यर्थ का विवाद मोल लेता रहता है। इस लेखक ने पं. श्रद्धाराम के बारे में एक ऐसे सत्य को उजागर किया जिससे सर्वसाधारण पर प्रकट हो गया कि यह व्यक्ति ईसाई प्रचारकों से द्रव्य प्राप्त कर ईसाइयत के समर्थन में लिखता रहता है। वस्तुतः हिन्दू धर्म का रक्षक और प्रचारक होने का दम्भ करने वाला श्रद्धाराम ईसाइयों का प्रच्छन्न प्रचारक भी होगा, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। पंजाबी भाषा तथा गुरमुखी लिपि में श्रद्धाराम ने जो ईसाई मत विषयक पुस्तक लिखी थी, उसका विज्ञापन पंजाब गवर्नमेण्ट गज़ट की संख्या ४६ में छपा था। इस पुस्तक में पं. श्रद्धाराम ने ईसा की तुलना राम और कृष्ण से की तथा उसे तारनहार बताया। इस भजन की प्रासंगिक पंक्तियां थीं-

ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।

मुख से ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल।[३] आदि

'आर्यदर्पण' में इस नोट के लेखक ने हरिद्वार के इस कुंम्भ में स्वामी दयानन्द की कार्य-प्रवृत्तियों का वास्तविक वर्णन किया तथा पं. श्रद्धाराम द्वारा फैलाई गई भ्रान्तियों का सटीक खण्डन भी किया।

(ख) स्वामी दयानन्द का काशी प्रवास : सम-सामयिक पत्रों में

भारत के धार्मिक और शैक्षिक इतिहास में काशी नगरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[४] इतिहासों, पुराणों तथा पुराकथाओं में काशी का अनेकत्र उल्लेख मिलता है।[५] शताब्दियों से काशी संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा। विभिन्न मत-सम्प्रदायों के आचार्य, साधु-संन्यासी, विरक्त, तपस्वी समय-समय पर काशी आते रहे हैं। पुराणों में इसे भगवान् भूतनाथ की पावन नगरी के रूप में वर्णित किया गया। शंकराचार्य और गुरु नानक ने काशी में आकर अपने विचारों का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द एकाधिक बार काशी आए[६] और पर्याप्त समय तक यहां रहे। उनके दूसरी बार के काशी निवास की अवधि में यहां के पण्डितों ने उनसे मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया, जिसका विस्तृत उल्लेख तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में मिलता है।[७] इस घटना के बाद तो वे एक राष्ट्रीय ख्याति के पुरुष बन गये और देशवासी उनके विचारों और सिद्धान्तों के प्रति अधिकाधिक आकर्षित होते गये। स्वयं के वेदभाष्य तथा अन्य शास्त्रों के प्रकाशन के लिए उन्होंने एक मुद्रणालय (वैदिक यंत्रालय) की स्थापना इसी नगरी में की[८] तथा थियोसोफी के प्रवर्त्तकद्वय-कर्नल ऑल्काट एवं मैडम ब्लैवेट्स्की से उनकी विशद धर्म-चर्चा भी इसी नगर में हुई। संस्कृत की पाठशाला स्थापित करने का विचार उनके मन में यहीं पर प्रादुर्भूत हुआ तथा इसी नगर में स्थानीय जिलाधीश ने उनके व्याख्यानों पर रोक लगाई जिसे बाद में गवर्नर के हस्तक्षेप के कारण हटाया गया। सात बार वे इस नगर में आए और अपनी विभिन्न कार्य-प्रवृत्तियों तथा क्रान्तिकारी विचारों के कारण तत्कालीन प्रेस में चर्चित हुए। स्वामीजी १८५६ में जब प्रथम बार काशी आए तब वे एक यायावर तत्त्व-जिज्ञासु संन्यासी के रूप में थे। उपदेशक और धर्मप्रचारक की भूमिका में उनके अवतीर्ण होने में अभी पर्याप्त समय बाकी था। प्रथम बार इस काशी निवास का उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में तो किया किन्तु अन्यत्र यह चर्चित नहीं हुआ। द्वितीय बार जब वे २१ सितम्बर १८६८ को काशी आये तो गंगा तटवर्ती प्रान्त में उनकी पहचान बन

चुकी थी। मथुरा में अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् वे आगरा, ग्वालियर, पुष्कर, अजमेर, हरिद्वार, फर्रूखाबाद, कानपुर आदि स्थानों में भ्रमण कर अपने उपदेशों से जिज्ञासुजनों को कृतार्थ कर चुके थे। लगभग एक मास तक गंगा पार रामनगर में रहने के बाद वे मुख्य बनारस नगर में २२ अक्टूबर १८६९ को आये और तीन सप्ताह बाद १६ नवम्बर को उन्होंने काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थसमर में पराजित किया। इस शास्त्रार्थ ने उनकी ख्याति को न केवल हिन्दी भाषी प्रदेशों अपितु सुदूर बंगाल तथा महाराष्ट्र तक फैला दिया। शास्त्रार्थ समाप्त होने पर स्वामी दयानन्द ने हिन्दी और संस्कृत में एक विज्ञापन छपा कर काशी के बाज़ारों, गलियों, राजमार्गों, घाटों तथा मन्दिरों में लगवाया जिसमें पण्डितों से मूर्तिपूजा की सिद्धि में वेदों के प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। बनारस से प्रकाशित होने वाले **'स्टार अख़बार'** ने स्वामीजी के महाराज विजयनगरम् के बाग में ठहरने की सूचना ६ दिसम्बर १८६९ के अंक में छापी तथा उस विज्ञापन का भी उल्लेख किया जो उन्होंने काशी के पण्डितों को सम्बोधित कर छपाया था। इस विज्ञापन को कलकत्ता के **'भारतमित्र'** (११ दिसम्बर १८६९), **'आर्यसमाचार' मेरठ** (दिसम्बर १८६९) तथा **'आर्यदर्पण' शाहजहांपुर** (फरवरी १८८०) ने शब्दशः प्रकाशित किया।

काशी से प्रकाशित होने वाले एक अन्य पत्र **'आर्यमित्र'** ने इस नगर में स्वामी दयानन्द की उपस्थिति तथा उनके क्रान्तिकारी विचारों के कारण उत्पन्न अभूतपूर्व हलचल का उल्लेख करते हुए कुछ पण्डितों के स्वामीजी के प्रति व्यक्त किये गये द्वेष एवं निन्दायुक्त वक्तव्यों की आलोचना की। कलकत्ता का हिन्दी पत्र **'सारसुधानिधि'** स्वयं को पुराणकथित सनातन धर्म का प्रवक्ता मानता था। उसने स्वामीजी के लिए 'नास्तिकाचार्य' तथा 'धूर्तशिरोमणि' जैसे कुत्सापूर्ण शब्द प्रयुक्त किये। **'आर्यमित्र'** ने **'सारसुधानिधि'** की इस अनर्गल आलोचना का तर्कपूर्ण शैली में प्रत्याख्यान किया। निश्चय ही १८६९ तक स्वामी दयानन्द का स्वधर्म प्रेम, देशोत्थान में उनकी लगन तथा व्यापक सुधार योजना अभी बीज रूप में ही थे। सामान्य जनता धार्मिक खण्डन-मण्डन में उनकी दूरदर्शिता तथा साम्प्रदायिक विभेदों को नष्ट करने की उनकी मनोभावना को पूर्णतया समझ नहीं सकी थी। यही कारण है कि हिन्दी के विख्यात लेखक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वामी दयानन्द को सनातनधर्म की मान्यताओं पर प्रहार करने वाले एक वितण्डावादी संन्यासी से भिन्न नहीं समझा। **'कविवचनसुधा'** (भारतेन्दु द्वारा सम्पादित मासिक) के दिसम्बर १८६९ के अंक में उन्होंने यहां तक लिख दिया कि काशी के संस्कृत विद्वान् बाबू प्रमदादास मित्र[९] से बातें करते समय स्वामीजी की वाणी प्रायः स्खलित हो जाती थी। 'आर्यमित्र' की दृष्टि में यह कथन सर्वथा निर्मूल था क्योंकि संस्कृत में धारा प्रवाह संभाषण करना दयानन्द की वाग्वैखरी का प्रोज्ज्वल उदाहरण था। ध्यातव्य है कि स्वामी दयानन्द पर किये गये **'सारसुधानिधि'** तथा **'कविवचन सुधा'** के पूर्वोक्त आक्षेपों का प्रतिवाद **'आर्यमित्र'** के दिसम्बर १८७९ के अंक में शास्त्रार्थ के १० वर्ष बाद प्रकाशित हुआ था। इस बीच स्वामी दयानन्द का प्रचण्ड धर्मसुधारक, अद्वितीय देशभक्त तथा मातृभूमि के सर्वविध कल्याण में तत्पर महापुरुष का जो रूप उभरा, इससे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी अप्रभावित नहीं रहे। १८७८ में उनका देशदशा का वस्तुनिष्ठ चित्रण करने वाला नाटक 'भारतदुर्दशा' प्रकाशित हुआ। इस पर स्वामी दयानन्द के विचारों का परोक्ष प्रभाव स्पष्टतया दिखाई पड़ा। इसी तथ्य को अनुभव कर **'आर्यमित्र'** ने लिखा, "स्वामीजी की १८६९ में निन्दा करने वाले भारतेन्दु का यह नाटक 'भारतदुर्दशा' स्वामीजी के उपदेशों के अनुकूल है।" कालान्तर में तो भारतेन्दु ने स्वामीजी की देशभक्ति, धर्म प्रेम तथा भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बांधने के उनके संकल्प को निर्विवाद रूप में स्वीकार कर लिया।

२० नवम्बर १८७९ को जब स्वामीजी काशी आये तो यह उनकी इस नगर की अन्तिम यात्रा थी। दो वर्ष पूर्व उन्होंने वेदों पर अपना भाष्य लिखना आरम्भ कर दिया था। उनका प्रसिद्ध सैद्धान्तिक ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश चार वर्ष पूर्व १८७५ में प्रकाशित हो चुका था। इस बार के काशी निवास में उन्होंने थियोसोफी के संस्थापकों से व्यापक विचार-विमर्श किया। हिन्दी के प्रसिद्ध गद्य लेखक तथा इस प्रान्त के विद्यालयों के निरीक्षक राजा शिवप्रसाद **सितारा-ए-हिन्द**[१०] से उनकी ब्राह्मण ग्रन्थों की कथित वेद संज्ञा पर चर्चा हुई। काशी के लोग स्वामीजी के विचारों को व्याख्यान रूप में सुनने के इच्छुक थे। अतः निश्चय हुआ कि बंगाली टोले के प्राइमरी स्कूल में उनका व्याख्यान कराया

जाये। यह भी तय रहा कि कर्नल ऑल्काट भी इस सभा में बोलेंगे। व्याख्यान की इस सूचना के प्रसारित होने की देर थी, विरोधी खेमे में हलचल मच गई। स्वामीजी के भावी व्याख्यान को उन्होंने अपने लिए अनिष्टसूचक समझा और झटपट जिला मैजिस्ट्रेट के पास पहुंचकर उसे रोकने के लिए कहा। यह आशंका व्यक्त की गई कि यदि व्याख्यान में दयानन्द सरस्वती पौराणिक हिन्दू धर्म की मान्यताओं पर खण्डनात्मक प्रहार करेंगे तो नगर में साम्प्रदायिक उपद्रव भड़क सकता है। उनकी शिकायत का एक कारण यह भी बन गया कि मोहर्रम का त्यौहार समीप था और स्वामीजी के व्याख्यान से मुसलमानों की भावनाओं को चोट पहुंचने की आशंका प्रकट की गई थी। मैजिस्ट्रेट ने तुरन्त निषेधाज्ञा लागू कर दी और स्वामीजी के व्याख्यान पर पाबन्दी लगा दी। स्वामीजी जब सभा स्थल पर पहुंचे तो अधिकारी ने उनके हाथ में मैजिस्ट्रेट का उक्त आज्ञापत्र थमा दिया। स्वामीजी ने राजाज्ञा का पालन करते हुए व्याख्यान तो नहीं दिया किन्तु अगले दिन एक प्रार्थना पत्र देकर मैजिस्ट्रेट से यह जानना चाहा कि किन कारणों से उनके व्याख्यानों को रोका गया है।

तत्कालीन पत्रों में जिला मैजिस्ट्रेट द्वारा स्वामीजी के व्याख्यानों पर रोक लगाने का व्यापक विरोध हुआ और पत्र-सम्पादकों ने इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक बताया। **'स्टार अख़बार'** बनारस ने अपने २७ दिसम्बर १८७६ के अंक में लिखा कि इससे पूर्व भी स्वामीजी अनेक बार काशी आए हैं और उनके व्याख्यानों ने कभी कोई समस्या पैदा नहीं की। यदि स्वामीजी के भाषण से इतर मतावलम्बी नाराज़ होते हैं और उनकी आस्थाओं पर चोट पहुंचती है तो सरकार यह क्यों नहीं मानती कि पादरियों द्वारा की जाने वाली हिन्दू धर्म की आलोचना और निन्दा भी इस धर्म के मानने वालों को आघात पहुंचाती है। इलाहाबाद के **'पायोनियर'** के एक यूरोपियन संवाददाता ने कलेक्टर के आदेश को अनुचित बताते हुए ३० दिसम्बर १८७६ के अंक में एक विस्तृत लेख लिखा। इसमें स्वामी दयानन्द के सुधार कार्य की प्रशंसा तो थी ही, सुन्दर भाषण करने में उन्हें दूसरा लूथर बताया गया था। संवाददाता ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि ऐसे व्यक्ति के भाषण को रोककर कलेक्टर मि. वाल ने स्वामी दयानन्द के तुल्य योग्य व्यक्ति को कष्ट पहुंचाया है।

'अवध अखबार' (लखनऊ) ने ६ जनवरी १८८० के अंक में **'पायोनियर'** में छपे उक्त वक्तव्य को ही छापा। किन्तु यह भी लिखा कि मैजिस्ट्रेट की यह कार्रवाई निहायत बचकाना है और कि प्रान्तीय सरकार को जिला अधिकारी से पूछना चाहिए कि वेदान्त पर बोलने वाले संन्यासी को क्यों रोका गया?

स्वामी दयानन्द के व्याख्यान पर लगाये गये प्रतिबन्ध का प्रतिरोध पत्रों में लगातार चलता रहा। **'पायोनियर'** के ए.वी. हिन्दू नामक एक संवाददाता ने इस पत्र के ८ जनवरी १८८० के अंक में एक लेख प्रकाशित कराकर पाठकों को १६ नवम्बर १८६६ को हुए उस शास्त्रार्थ की याद दिलाई जिसमें स्वामी दयानन्द ने काशी के विद्वानों से मूर्तिपूजा के समर्थन में वेदों के प्रमाण मांगे थे। इस संवाददाता ने प्रकारान्तर से मूर्तिपूजा का समर्थन तो किया किन्तु स्वामीजी के इस अधिकार को भी स्वीकार किया कि वे यथेच्छ काशी में आकर यहां के विद्वानों को अपने व्याख्यान में पुनः शास्त्रार्थ के लिए आहूत कर सकते हैं। इसे रोकने की राजकीय आज्ञा का क्या औचित्य है?

ए.बी. हिन्दू के काशी शास्त्रार्थ विषयक उक्त लेख की समीक्षा में 'एक आर्य संवाददाता' ने **'पायोनियर'** के (१५ जनवरी १८८०) के अंक में एक संक्षिप्त लेख प्रकाशित कराया जिसका सारांश यह था कि **'पायोनियर'** पत्र के अधिकांश यूरोपियन पाठकों के लिए काशी शास्त्रार्थ का ए.बी. हिन्दू प्रदत्त विवरण दुर्बोध है। अतः इसे उक्त अंक में विस्तार से देने का क्या औचित्य था? अन्ततः निषेधाज्ञा हटा ली गई। **'पायोनियर'** के ६ जनवरी १८८० के अंक में जिला मैजिस्ट्रेट द्वारा निषेधाज्ञा हटाने का उल्लेख है। २१ मार्च १८८० से स्वामीजी के दिसम्बर १८७६ में रोके गये व्याख्यानों का सिलसिला जारी हुआ। कलकत्ता के **भारत मित्र** (१ अप्रैल १८८०) ने इस व्याख्यान के प्रति अपनी शुभाशंसा प्रकट की तथा **थियोसोफिस्ट** (मार्च १८८०) ने लिखा कि व्याख्यानों के लिए आज्ञा प्रदान करने से पूर्व कलेक्टर वाल ने स्वामीजी से एक घण्टे तक विचार-विमर्श किया था। **'पायोनियर'** (६ जनवरी १८८०) का कहना था कि मि. वाल ने जब अनुभव किया कि व्याख्यान को रोकना अनुचित था तो उन्होंने तुरन्त अपना आदेश वापिस ले लिया।

स्वामीजी के इस बार के काशी वास तथा व्याख्यानों पर पहले प्रतिबन्ध लगाये जाने और तीन महीने बाद उठाये जाने की चर्चा आर्य पत्रों में भी हुई। फर्रूखाबाद के **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** (दिसम्बर १८७६) ने लिखा, "स्वामीजी से भेंट करने के लिए कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की १५ दिसम्बर १८७६ को काशी पहुंच गये हैं। इन लोगों ने अपने व्याख्यानों में वेदादि आर्यशास्त्रों की भरपूर प्रशंसा की तथा भारत के जागरण में स्वामी दयानन्द की भूमिका को निर्विवाद बताया। मेरठ के **'आर्यसमाचार'** ने अपने चैत्र सं. १९३६ वि. के अंक में काशी में स्वामीजी के व्याख्यानों पर तो प्रसन्नता प्रकट की किन्तु यह भी लिखा कि इन व्याख्यानों से धार्मिक पुरुष प्रसन्न हैं परन्तु पोपों के कलेजे टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। अजमेर के **'देशहितैषी'** (माघ १९३८ वि.) ने भी इन व्याख्यानों की चर्चा की तथा लिखा कि प्रथम दिन के व्याख्यान का विषय यज्ञोपवीत का महत्त्व बताना था।

काशी में स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों को निषेधाज्ञा द्वारा बन्द करवाना और पुनः जनमत के दबाव के आगे उनके लिए स्वीकृति देना यह सिद्ध करता है कि ब्रिटिश शासन यों तो धार्मिक स्वतंत्रता के लिए अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा करता रहा है किन्तु संकीर्णमना व्यक्तियों के दबाव में आकर वह यदा-कदा धार्मिक विचारों को प्रकट करने के अधिकार को दबाने में भी पीछे नहीं रहा। काशी का यह प्रसंग इसका उदाहरण है। यहां यह भी ध्यातव्य है कि काशी के कट्टरपन्थी समाचार-पत्रों ने स्वामीजी के व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध लगाने पर खुशी का इज़हार किया था तथा **'पायोनियर'** जैसे उदार अंग्रेजी पत्र की उस समय आलोचना की जब उसने स्वामीजी के पक्ष का समर्थन किया। (द्रष्टव्य-**कविवचन सुधा,** १९ जनवरी १८८०)

(ग) आर्यसमाज काशी की स्थापना

धर्म और विद्या की केन्द्र काशी नगरी में आर्यसमाज की स्थापना स्वामी दयानन्द की उपस्थिति में १८ अप्रैल १८८० को हुई। इस समाचार को फर्रूखाबाद के **'भारतसुदशा प्रवर्त्तक'** ने अप्रैल १८८० के अंक में प्रकाशित किया। यही समाचार **'आर्यदर्पण'** (खण्ड ३, संख्या १) में छपा।

काशी के विद्वान् संन्यासियों में स्वामी विशुद्धानन्द की बड़ी ख्याति थी। १८६९ में जो शास्त्रार्थ काशी में हुआ, उसमें मूर्तिपूजा का समर्थन करने वाले

पण्डितों में स्वामी विशुद्धानन्द ही प्रमुख थे। अब जब स्वामी दयानन्द का वेद भाष्य छपने लगा तो अनेक विद्वानों की उस पर सम्मतियाँ भी आने लगीं। प्रत्यक्षतया तो स्वामी विशुद्धानन्द स्वामी दयानन्द कृत वेदभाष्य की प्रशंसा करने में संकोच करते थे किन्तु एक निजी चर्चा में उन्होंने स्वीकार किया कि **"स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य महत्त्वपूर्ण तथा मंत्रों के शुद्ध अर्थों की दृष्टि से विश्वसनीय है। परन्तु हम सर्वसाधारण के सामने इस सत्य को स्वीकार कैसे करें? यदि मैं ऐसा करने लगूं तो मेरा सारा सम्मान मिट्टी में मिल जाएगा।"** यह टिप्पणी मेरठ के **'आर्य समाचार'** ने आश्विन सं. १६३८ वि. के अंक में प्रकाशित की थी। **'आर्यदर्पण'** ने फरवरी १८८० के अंक में इससे मिलता-जुलता एक प्रसंग प्रकाशित किया। काशी के एक विद्वान् ने स्वीकार किया था कि स्वामी दयानन्द कहते तो सत्य है, किन्तु हम इस सत्य को कहने में डरते हैं। यदि हम भी स्वामीजी की भांति सत्य कहने लगें तो हमें यजमानों से दान मिलना वन्द हो जाए। यह तो हमारी जीविका का सवाल है जिस कारण हम धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्डों का खण्डन करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

(घ) ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा द्वारा प्रकाशित एक अशिष्ट सूचना तथा उसका निराकरण

जिस समय स्वामी दयानन्द काशी में विराजमान थे, कलकत्ता के **'दैनिक भारतमित्र'** के १६ अगस्त १८८० के अंक में किसी व्यक्ति ने एक समाचार छपवाया जिसका आशय यह था कि काशी की 'ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा' ने एक विज्ञापन छपाया है जिसमें कतिपय व्यक्तियों के हवाले से कहा गया है कि हम लोगों ने सत्य वेदार्थ का निश्चय करने के लिए जब स्वामी दयानन्द से भेंट की तो हमें उनसे वेद विरुद्ध तथा शिष्टाचार विरुद्ध बातों के सिवा और कुछ सुनने को नहीं मिला। इस प्रकार हमसे एक बहुत बड़ा पाप हो गया। (स्वामीजी से भेंट को ही वे पाप मानते हैं) और इसके प्रायश्चित के लिए हम लोग काशी की 'ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा' के पं. जुगलकिशोर पाठक के समीप गये। उनके परामर्श से इस पाप की निवृत्ति के लिए गंगा के मणिकर्णिका घाट पर जाकर हमने शास्त्रविधि से प्रायश्चित किया और विश्वनाथ के दर्शन कर

स्वयं को पुनः पवित्र किया। प्रायश्चित करने वाले चार लोगों के नाम भी इस सूचना में लिखे थे।"

इस मिथ्या विज्ञापन का पर्दाफाश करने के लिए आर्यसमाज काशी के बाबू नारायणसिंह ने उक्त पं. जुगलकिशोर से उन चारों को उनसे मिलाने के लिए कहा, जिन्होंने कथित प्रायश्चित किया था। वस्तुतः वे चारों नाम तो झूठे ही थे। अन्ततः पं. जुगलकिशोर एक आदमी को लेकर आये। उसे समझा दिया था कि वह अपना नाम 'रामप्रसाद दुबे' बताए। वस्तुतः वह रामकृष्ण दुबे था और हड़बड़ी में उसने अपना यही नाम बाबू नारायणसिंह को बता दिया। इस प्रकार पं. जुगलकिशोर की पोल खुल गई। **'आर्यदर्पण'** ने मई १८८० के अंक में प्रायश्चित की यह कल्पित कथा गढ़कर स्वामी दयानन्द को बदनाम करने वाले इस षड्यंत्र का भण्डाफोड़ किया।

(ङ) वैदिक यंत्रालय की स्थापना का वृत्तान्त

यों तो स्वामी दयानन्द के अनेक ग्रन्थ १८७७ से पहले भी छपे थे किन्तु इस वर्ष से उन्होंने वेदभाष्य के लिखने तथा प्रकाशित कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ किया। वेद विषयक अपने सिद्धान्तों तथा करिष्यमाण भाष्य की रीति एवं पद्धति को समझाने के लिए उन्होंने पहले ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की रचना की और उसे धारावाही रूप से काशी के लाजरस प्रेस तथा बम्बई के निर्णयसागर प्रेस में मुद्रित करवाया।[१२] कालान्तर में जब वेदभाष्य भी मासिक अंकों के रूप में द्रुतगति से प्रकाशित होने लगा तो स्वामीजी ने अनुभव किया कि यदि निज का प्रेस हो तो ग्रन्थ मुद्रण के इस कार्य में गति आ जाएगी। फलतः काशी में वैदिक यंत्रालय की स्थापना हुई। इस यंत्रालय की स्थापना का सुझाव सर्वप्रथम आर्यसमाज फर्रूखाबाद की ओर से रखा गया था। आर्यसमाज मेरठ ने इसका अनुमोदन करते हुए **'आर्यसमाचार'** के जनवरी १८८० के अंक में जो सूचना छपाई उसका आशय था कि यंत्रालय की स्थापना हेतु जो लोग चंदा दें उसे मुंशी इन्द्रमणि के पास मुरादाबाद भेजा जाए। तुरन्त बाद फरवरी १८८० के अंक में वैदिक यंत्रालय के लिए धन प्रदान करने वालों से कहा गया कि वे अपनी राशि स्वामी दयानन्द को भेजें तथा इसकी सूचना आर्यसमाज मेरठ को देवें। यह विज्ञप्ति आर्यसमाज मेरठ के

मंत्री आनन्दलाल के हस्ताक्षरों से छपी थी। यंत्रालय की स्थापना विषयक उक्त अभ्यर्थना का आर्यों द्वारा स्वागत किया गया और १२ फरवरी १८८० को काशी में लक्ष्मीकुण्ड के निकट महाराजा विजयनगर के बाग में वैदिक यंत्रालय की स्थापना हुई। मुंशी बख्तावरसिंह को इसका वैतनिक प्रबन्धक नियुक्त किया गया।

(च) फर्रूखाबाद और फतहगढ़ में स्वामी दयानन्द

उत्तरप्रदेश के फर्रूखाबाद नगर में स्वामी दयानन्द का पदार्पण अनेक बार हुआ था।[१३] यहां का वैश्य समुदाय उनका एकान्त भक्त था[१४] तथा प्रत्येक लोकोपकारी कार्य में उनकी सहायता करता था। **'नौरंग-ए-मज़ामी'** नामक एक उर्दू पत्र ने ३० अक्टूबर १८७६ के अंक में स्वामीजी के इस नगर में आने तथा व्याख्यान देने का विवरण छापा। इस पत्र के अनुसार स्वामी दयानन्द यहां आये और गंगा के तट पर लाला जगन्नाथप्रसाद के विश्रान्त घाट[१५] पर ठहरे। इन्हीं लालाजी के निवास पर उनके व्याख्यान होते रहे, जिनमें एकाध बार यहां के जॉइण्ट मैजिस्ट्रेट तथा पादरी भी आये थे। यहां से स्वामीजी समीपवर्ती कैम्प फतहगढ़ भी गये और वहां से कानपुर के लिए प्रस्थान किया। इन दिनों स्वामीजी वैदिक यंत्रालय की स्थापना की योजना बना रहे थे। इस नगर के लोगों ने इस मुद्रणालय की स्थापना के लिए प्रचुर आर्थिक सहायता प्रदान की। इस समाचार पर सम्पादक ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि जिला स्कूल के मुख्याध्यापक पं. बलदेवप्रसाद ने स्वामीजी को २५ प्रश्न लिखकर भेजे। इनका उत्तर स्वामीजी ने तुरन्त दे दिया।

(छ) स्वामी दयानन्द देहरादून में

स्वामी दयानन्द के देहरादून निवास का विस्तृत विवरण मेरठ के **'आर्यसमाचार'** (नवम्बर १८८०) में छपा था। इसे भेजने वाले इस नगर की आर्यसमाज के मंत्री पं. कृपाराम थे।[१६] यहां प्रारम्भ में सनातनी पण्डितों से स्वामीजी के शास्त्रार्थ की चर्चा चली किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। प्रतिपक्षी पण्डित शास्त्रार्थ के लिए राजी नहीं हुए। यही बात मुसलमानों के साथ दोहराई गई और मौलवी लोग भी शास्त्रार्थ के लिए नहीं आए। देहरादून के पादरी गिलबर्ट मैक्सामर वेद और इंजील की प्रामाणिकता पर शास्त्रार्थ हेतु

स्वामीजी के पास आये तो अवश्य, किन्तु मूल प्रश्न पर विचार किये बिना अप्रासंगिक, अनावश्यक वार्तालाप कर चले गये। इस बार देहरादून के एक मुसलमान मुंशी मोहम्मद उमर ने हिन्दूधर्म में प्रवेश किया। स्वामीजी ने उसका नाम अलखधारी रखा।

(ज) स्वामी दयानन्द का आगरा निवास

स्वामी दयानन्द के आगरे के कार्यक्रमों का वृत्तान्त अधिकांश में उर्दू पत्र **'नसीम'** में छपता रहा। २० नवम्बर १८८० के **'नसीम'** ने लिखा कि आजकल इस नगर में स्वामी दयानन्द के आने की चर्चा चल रही है। इसके बाद ३० नवम्बर १८८० के **'नसीम'** ने लिखा, "२५ नवम्बर को रात्रि को नौ बजे स्वामी दयानन्द यहां पहुंचे और मुफीद-ए-आम स्कूल के पुराने भवन में ठहरे। उनके व्याख्यान निरन्तर हो रहे हैं और श्रोतागण बड़ी संख्या में आते हैं।" १० दिसम्बर के **'नसीम'** में ठाकुर श्यामलालसिंह के तीन लड़कों के स्वामीजी द्वारा यज्ञोपवीत लेने तथा इस संस्कार को सम्पन्न कराने के समय हुए हवन का विस्तृत वर्णन छपा। उस समय यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को एक रुपये से लेकर चार आने तक दक्षिणा दी गई। २० दिसम्बर के **'नसीम'** ने स्वामीजी के स्थानीय कैथोलिक चर्च के पादरी के आग्रह पर आगरा के बड़े गिरजाघर में जाने का समाचार प्रकाशित किया। अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ स्वामी दयानन्द आगरा के ख्रीस्तीय उपासना गृह में गये और पादरी साहब से देर तक धार्मिक चर्चा की। २३ दिसम्बर के **'नसीम'** में लिखा गया कि स्वामी दयानन्द का मुख्य लक्ष्य जड़पूजा को समाप्त कर देने का है।

इसके बाद आगरा में स्वामीजी के व्याख्यानों का एक लम्बा सिलसिला चला। २३ तथा ३० जनवरी १८८१ के **'नसीम'** ने जनवरी महीने में उनके सात व्याख्यान होने की सूचना प्रकाशित की। २८ फरवरी तथा ७ मार्च १८८१ के **'नसीम'** ने सेव बाजार में स्वामी दयानन्द के व्याख्यान होने का समाचार दिया।

हिन्दी पत्र **'भारती विलास'** आगरा से ही छपता था। इसके २५ फरवरी के अंक में सेव बाजार की कोठी नं. १३४ में स्वामी दयानन्द के

व्याख्यान होने की खबर छपी जबकि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मासिक **'कवि-वचन सुधा'** ने ३१ जनवरी १८८१ के अंक में स्वामीजी के आगरा निवास का विस्तृत समाचार दिया।

पं. चतुर्भुज स्वामीजी के प्रवल विरोधी थे। उन्होंने स्वामीजी के विरोध में कुछ व्याख्यान वेलनगंज तथा विक्टोरिया कॉलेज से सम्बद्ध पाठशाला में दिये। यह चर्चा **'नसीम'** के ७ तथा १५ जनवरी के अंकों में छपी। ये महाशय स्वयं को राज पौराणिक कहकर अपना परिचय देते तथा माघ के मेले में प्रायः प्रयाग जाकर पौराणिक मत के समर्थन में व्याख्यान दिंया करते थे। हिन्दी के प्रख्यात लेखक **पं. बालकृष्ण भट्ट**[१७] उन दिनों **'हिन्दी प्रदीप'** नामक अपना प्रसिद्ध मासिक निकालते थे। इस पत्र के फरवरी १८८३ के अंक में उन्होंने चतुर्भुज के प्रसंग को उठाकर उसके पाखण्डपूर्ण कृत्यों की विस्तार से आलोचना की। स्वामी दयानन्द के विषय में भट्टजी ने लिखा, "हमको स्वामी दयानन्द से कुछ प्रयोजन नहीं। न हम सर्वांश में उनके मत के पोषक हैं **परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि दयानन्द एक अकेला साधु मनुष्य है जो सच्चे जी से देश की भलाई चाहता है। उसके व्यक्तित्व से देश को लाभ पहुंचा है।"**

पं. चतुर्भुज की धूर्तता को कलकत्ता के **'भारत मित्र'** (८ मार्च १८८३) ने भी उजागर किया। इस पत्र ने प्रयाग के एक पाठक का पत्र छापा जिसमें चतुर्भुज शास्त्री के छल-प्रपञ्च पर टिप्पणी की गई थी। चतुर्भुज कहा करता था कि जो व्यक्ति स्वामी दयानन्द के साथ रहेगा या उनके व्याख्यान सुनेगा, वह धर्म से पतित हो जाएगा। रामनारायण तथा बिहारीलाल नाम के दो व्यक्तियों से उसकी मिलीभगत थी। चतुर्भुज की उक्त बात को एक व्याख्यान में सुनकर ये दोनों व्यक्ति खड़े होकर कहने लगे कि हमने स्वामीजी के वैदिक यंत्रालय में कुछ समय तक काम किया था। अतः हम स्वयं को पापी मानते हैं अब आपका (चतुर्भुज शास्त्री) उपदेश सुनकर पुनः शुद्ध हुए हैं। **'भारत-मित्र'** पत्र लेखक ने इन लोगों को बुद्धिहीन तथा अविद्या के भण्डार कह कर कोसा तथा व्यंग्यपूर्वक लिखा कि **यदि स्वामी दयानन्द के यंत्रालय में काम करने से कोई मनुष्य पतित हो जाता है तो तुम्हारे ही वर्ग के पण्डित पादरी लोगों के ग्रन्थों के प्रूफ देखकर द्रव्योपार्जन क्यों करते हैं? क्या वे**

इससे पतित नहीं होते? क्या हम सभी जो अंग्रेजों के म्लेच्छ राज्य में रहते हैं अपने को पतित समझें? पत्र लेखक ने चतुर्भुज के बारे में लिखा कि इसे काशी के राजा की ओर से नियमित धन मिलता है, इसीलिए यह स्वामी दयानन्द के विरोध में यथा-तथा बकता रहता है।

'नसीम' (१५ मार्च १८८१) तथा **'भारती विलास'** (खण्ड १ संख्या ८) ने स्वामीजी के आगरा से भरतपुर की ओर जाने का समाचार छापा।

आगरा से चलकर स्वामीजी अजमेर आये। उनके यहां आने की चर्चा बहुत पहले से थी, क्योंकि **'भारती विलास'** के अजमेर स्थित संवाददाता ने २५ फरवरी १८८१ के अंक में यह संवाद प्रकाशित करा दिया था कि अजमेर के निवासी स्वामीजी के आगमन के समाचार से प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं। १५ अप्रैल १८८१ के **'भारती विलास'** ने १३ फरवरी १८८१ को अजमेर में आर्यसमाज स्थापित होने की खबर छापी तथा उसके साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का विवरण भी प्रस्तुत किया। इस बार लगभग डेढ़ महीने तक स्वामीजी अजमेर रहे तथा निरन्तर व्याख्यान देकर वहां की जनता को तृप्त करते रहे। **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** ने जुलाई १८८१ के अंक में एक सूचना छापी जिसका आशय था कि राव साहब मसूदा का निमंत्रण पाकर स्वामीजी २३ जून १८८१ को मसूदा चले गए हैं। यह सूचना मुन्नालाल उपमंत्री आर्यसमाज अजमेर के हवाले से छपी थी। यही समाचार **'भारती-विलास'** (आगरा) ने जुलाई १८८१ के अंक में छापा तथा पाठकों को बताया कि अजमेर से मसूदा १६ कोस की दूरी पर है।

हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्ध लेखक **पं. बालकृष्ण भट्ट** की शैली में व्यंग्य की प्रधानता रहती थी। जैसा कि हम देख चुके हैं वे स्वामी दयानन्द के विचारों से सर्वांश में सहमत नहीं थे किन्तु उन्हें सच्चा देशभक्त मानते थे। **'हिन्दी-प्रदीप'** के अक्टूबर १८८१ के अंक में उन्होंने इसी लाक्षणिक शैली में लिखा, "प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना एक आदर्श होता है। जैसे पण्डितों का आदर्श केवल दक्षिणा है। स्वामी दयानन्द का आदर्श प्रतिमापूजन का जड़-मूल से उच्छेदन है। इण्डियन पोप लोगों (वल्लभ-सम्प्रदाय के महाराजों को लक्ष्य में रखकर लिखा) का आदर्श अपने सेवकों से उनके तन-मन-धन का अर्पण कराना है।" **प्रदीप** की यह व्यंग्योक्ति इतनी लोकप्रिय हुई कि अनेक पत्रों ने

उसे उद्धृत किया। 'नसीम' (आगरा-२३ दिसम्बर १८८१) कलकत्ता के 'उचित वक्ता' तथा शाहजहांपुर के 'आर्यदर्पण' ने भट्टजी के इस कथन को यथावत् छापा।

(झ) स्वामी दयानन्द के मेरठ निवास का वर्णन

काशी और फर्रुखाबाद की भांति स्वामीजी का मेरठ में आगमन अनेक बार हुआ था।[१९] ८ जुलाई १८८० को जब वे मेरठ आये तो उन्होंने सितम्बर १८८० तक इस नगर में निवास किया। इस बार का यहाँ का विवरण मेरठ से ही छपने वाले उर्दू पत्र 'आर्य समाचार' ने कार्तिक सं. १९३७ वि. के अंक में छापा। इस पत्र के अनुसार इस बार के मेरठ निवास में स्वामीजी से मिलने के लिए संस्कृत की विदुषी रमाबाई कलकत्ता से आई और पर्याप्त समय तक स्वामीजी से विचार-विमर्श करने के पश्चात् पुनः कलकत्ता लौट गई। इसी अवधि में शिमला जाते हुए थियोसोफी के नेता कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की मेरठ रुके। यहां उनका स्वामीजी से आर्यसमाज के प्रथम दो नियमों (ईश्वर विषयक) पर चर्चा तथा शंका समाधान हुआ। कर्नल ऑल्काट ने भी आर्यसमाज में उपस्थित होकर अपनी श्रीलंका (सिलोन) की यात्रा का विवरण सुनाया।

स्थानीय आर्यसमाज के द्वितीय वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिए स्वामीजी पुनः मेरठ आये।[२०] 'आर्य समाचार' ने कार्तिक १९३७ वि. के अंक में इस उत्सव का विस्तारपूर्वक वर्णन छापा। इसे पढ़ने से विदित होता है कि स्थापना के बाद के वर्षों में आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों में लगभग वैसे ही कार्यक्रम होते थे जो वर्तमान में प्रचलित हैं। मेरठ के इस उत्सव में भी प्रातः हवन तथा ईश्वरोपासना हुई। मध्याह्न के बाद चार बजे की सभा में विभिन्न आर्यसमाजों से आये सभासदों के संक्षिप्त भाषणों के अनन्तर स्वामी दयानन्द का मुख्य उपदेश हुआ। समीपवर्ती नगरों में अनेक आर्यपुरुष इस समारोह में सम्मिलित होने के लिए आए थे।

(ञ) लखनऊ में स्वामी दयानन्द का अंग्रेजी सीखना

जिस समय स्वामी दयानन्द लखनऊ में थे, उनके कतिपय हितैषी मित्रों ने उन्हें सुझाव दिया कि उन्हें अंग्रेजी का अभ्यास कर वैदिक सत्य धर्म के

प्रचारार्थ विलायत (यूरोप) जाना चाहिए।[२१] स्वामीजी ने इस सुझाव को मानकर एक बंगाली महानुभाव बनमाली बाबू को इस कार्य के लिए नियुक्त किया किन्तु उपदेश, शास्त्रार्थ, वेदभाष्य लेखन तथा निरन्तर देशाटन की व्यस्तताओं के कारण यह कार्य आगे नहीं बढ़ा। उनके अंग्रेजी सीखने के समाचार को कलकत्ता के **'इण्डियन मिरर'** से लेकर पटना के **'बिहार-बन्धु'** (१८ अक्टूबर १८७६) ने छापा तथा लिखा, "पं. दयानन्द सरस्वती विलायत जाना चाहते हैं। इसलिए आज कल लखनऊ में अंग्रेजी पढ़ रहे हैं।" यही समाचार ब्रह्मसमाज लाहौर के पत्र **'हिन्दू बांधव'** ने १ अक्टूबर १८७६ के अंक में प्रकाशित किया। इतना विशेष लिखा कि स्वामीजी के विलायत जाने से वहां के पूर्वीय भाषाओं के विद्वानों में इनकी विद्वता की बड़ी धूम रहेगी।

एक दिन ईश्वर की एकता पर व्याख्यान देते हुए लखनऊ में स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मसमाज द्वारा 'एक अद्वितीय, निराकार ब्रह्म' की उपासना पर जोर देने के लिए ब्राह्म लोगों की प्रशंसा की। इस व्याख्यान का सार कलकत्ता के **'इण्डियन मिरर'** तथा लाहौर के **'हिन्दू बांधव'** (१ अक्टूबर १८७६) ने छापा।

(ट) 'इण्डियन मिरर' में छपी एक गलत ख़बर

समाचार-पत्र सदा सही खबर ही छापते हैं, ऐसी बात नहीं है। पत्रों में सकारण या अकारण, कभी-कभी सर्वथा अलीक और मिथ्या ख़बरें भी छप जाती हैं। स्वामी दयानन्द ने धार्मिक अन्धविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जैसा प्रबल आन्दोलन छेड़ा था, उसे देखते हुए आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अनेक लोग उनके प्रबल विरोधी हो गए थे। ये प्रतिपक्षी लोग स्वामीजी की अमल धवल कीर्ति को दूषित करने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। ऐसे ही किसी व्यक्ति ने **'इण्डियन मिरर'** (२ दिसम्बर १८७६) के अंक में यह समाचार छपाया कि बिहार के किसी कस्बे में स्वामी दयानन्द ने एक देव प्रतिमा को लात मार दी। उक्त पत्र ने इस ख़बर को सत्य मानकर यहां तक लिख दिया कि "यदि यह सत्य है तो एक हिन्दू मूर्ति भंजक और एक जोशीले ईसाई प्रचारक में थोड़ा ही अन्तर मानना चाहिए।" **'लखनऊ-विटनेस'** नामक किसी अंग्रेजी पत्र ने भी कुछ इसी प्रकार की बात लिखी थी।

परन्तु यह समाचार सर्वथा असत्य था। किसी शरारती ने **'इण्डियन मिरर'** को यह मिथ्या ख़बर भेजी थी। स्वामी दयानन्द मन्दिरों को हटाने और मूर्तियों को ध्वस्त करने के समर्थक कभी नहीं रहे। वे तो लोगों के मन-मस्तिष्क से मूर्तिपूजा के विश्वास को निर्मूल करना चाहते थे।[२२]

(ठ) छपरा (बिहार) में स्वामी दयानन्द

कलकत्ता से लौटते हुए स्वामी दयानन्द जब छपरा आये तो उनका आतिथ्य वहां के एक धनी जमींदार राय शिवगुलामशाह ने किया। इस नगर में कुछ पौराणिक पण्डितों ने उनसे शास्त्रार्थ की चर्चा चलाई किन्तु बात आगे नहीं बढ़ी। **'बिहार दर्पण'** नामक पत्रिका ने इसके बारे में लिखा कि यहां स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिए अनेक ब्राह्मण एकत्र तो हुए किन्तु उन्हें अपने उद्देश्य को पूरा करने में सफलता नहीं मिली। राय शिवगुलामशाह ने स्वामीजी का पूरा सत्कार किया और विदाई के समय काफी दूर तक उनके साथ जाकर उनको सम्मानपूर्वक विदा किया। **'बिहार दर्पण'** के अंक की तिथि पं. लेखराम ने नहीं लिखी। यहां केवल पृष्ठ २५३ का ही उल्लेख मिलता है।

(ड) 'नीति प्रकाश' में स्वामी दयानन्द के पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्रचार पर टिप्पणी

(१) मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने कानपुर में स्वामी दयानन्द के धर्म प्रचार का विवरण अपने पत्र **'नीति प्रकाश'** में (पृ. ५९२ अंक का उल्लेख नहीं) इस पत्र के संवाददाता के हवाले से प्रकाशित किया था। उक्त पत्र के अनुसार, **"स्वामीजी एक ईश्वर की उपासना का प्रतिपादन करते हैं, मूर्तिपूजा को व्यर्थ बताते हैं तथा वेदों के अनुसार जीवन यापन को प्रशस्त कहते हैं। वे भागवतादि पुराणों को किस्से कहानी से अधिक महत्त्व नहीं देते।"** इसी पत्र ने अपने एक अंक में हाथरस में स्वामी दयानन्द के एक व्याख्यान की चर्चा करते हुए लिखा कि यहां के ब्राह्मणों में स्वामीजी को लेकर यह धारणा बनी है कि यदि जनता उनके बताये रास्ते पर चलेगी तो हमारी आजीविका मारी जाएगी, क्योंकि जिन भोले-भाले यजमानों को हम धर्म के नाम पर लूटते हैं, हमारी वह प्रवञ्चना (धोखाधड़ी) समाप्त हो जाएगी।

(२) मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी धार्मिक विषयों पर चुटीले और मर्मभेदी लेख प्रायः अपने पत्र "नीतिप्रकाश' में लिखते थे। हाथरस में दिये गये स्वामीजी के उक्त व्याख्यान की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने पत्र में (१८७४ पृ. ४१) लिखा, "दयानन्द सरस्वती ने हाथरस में एक उपदेश सर्वसाधारण के लिए दिया। वहां के बिरंहमन डर गये कि उन्होंने हमारी रोटियों को खोया और यह दयानन्द हमारी चिड़ियों (यजमानों) को हमारे (पाखण्ड) जाल से निकालता है।" आगे व्यंग्य में लिखा, "भारतवासी प्रशंसा के योग्य हैं कि उनके माल (धन) मही (धरती) महिला (स्त्री) के बिरहमन, मुसलमान, ईसाई सब इच्छुक हैं।"

पाद टिप्पणियां

१. स्वामी दयानन्द के हरिद्वार में सम्पन्न होने वाले तीन कुम्भ मेलों में सम्मिलित हुए थे। १८५५ के मेले में जब गये तो वे एक साधारण यायावर पर्यटक संन्यासी के रूप में थे। १८६७ के कुम्भ में पहुंचकर उन्होंने 'पाखण्ड खण्डनी पताका' का आरोपण किया और १८७९ के तीसरे कुम्भ में जब गये तो उस समय एक प्रसिद्ध धर्माचार्य तथा समाजसुधारक की भूमिका में थे। उनकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी।

२. कनखल में जो मन्दिर दक्ष मन्दिर के नाम से जाना जाता है वह वस्तुतः दक्षेश्वर महादेव का है। दक्ष प्रजापति भगवान शिव के श्वसुर थे। उनकी पुत्री सती से शिव का विवाह हुआ था। दक्ष द्वारा सम्पन्न एक यज्ञ में न तो शिव को आमंत्रित किया गया और न सती को। यह प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। यज्ञ में अपने पिता द्वारा आमंत्रित न किये जाने के उपरान्त भी सती यज्ञस्थल पर पहुंची और अपमान की वेदना को न सहकर यज्ञ कुण्ड में स्वयं जल कर मर गई। तत्पश्चात् शिव के गणों ने दक्ष-यज्ञ को ध्वंस कर दिया और स्वयं दक्ष भी मार डाले गये।

३. कालान्तर में स्वामी श्रद्धानन्द (तब लाला मुंशीराम) के साले लाला देवराज की पुत्रियां, मिशन स्कूल जालन्धर, जहां वे पढ़ती थीं, से लौटकर घर में ईसा की प्रशंसा का यही भजन गाने लगीं तो लाला मुंशीराम तथा लाला देवराज ने अनुभव किया कि ईसाई विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों को किस प्रकार परकीय धर्म के संस्कार दिये जाते हैं। इसी अनुभव ने उन्हें जालन्धर में आर्य कन्या विद्यालय स्थापित करने की प्रेरणा दी।

४. काशी के प्राचीन संस्कृत विद्वानों की जानकारी के लिए पं. बलदेव उपाध्याय लिखित 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' नामक ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

५. द्रष्टव्य-प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित हंस का काशी अंक।

६. स्वामी दयानन्द सात बार काशी आए थे। द्रष्टव्य-इस लेखक का ग्रन्थ काशी में महर्षि दयानन्द-१९६८

७. देखें-इसी पुस्तक का काशी शास्त्रार्थ शीर्षक छठा अध्याय

८. यह मुद्रणालय वैदिक यंत्रालय के नाम से १२ फरवरी १८८० को स्थापित किया गया। विस्तृत वृत्तान्त के लिए लेखक की पुस्तक परोपकारिणी सभा का इतिहास द्रष्टव्य है। (अध्याय ४, पृ. २२-२७)

९. मूलतः बंगाली किन्तु काशी में रहने वाले मित्र महाशय संस्कृत के विद्वान् थे। विशेष परिचय के लिए 'काशी की पाण्डित्य परम्परा' द्रष्टव्य है।

१०. राजा शिवप्रसाद सितारा-ए-हिन्द जन्मना जैन थे, किन्तु काशी की पण्डित मण्डली में उनका उठना-बैठना प्रायः रहता था। वे हिन्दी के प्रसिद्ध गद्यकार माने जाते हैं, यद्यपि उन्होंने हिन्दी को उर्दू, फारसीमय बनाने का समर्थन किया था।

११. कथित प्रायश्चित करने वाले थे, सीताराम, बबुआनन्द पाण्डे, कृष्णाराम शुक्ल तथा रामप्रसाद दुबे।

१२. 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' मासिक पत्र के रूप में १६ अंकों में प्रकाशित हुई थी। प्रथम चौदह अंक लाजरस प्रेस काशी में तथा अन्तिम १५-१६ का संयुक्तांक बम्बई के निर्णय सागर यंत्रालय में मुद्रित हुआ था।

१३. मौलवी महेशप्रसाद द्वारा तैयार की गई स्वामी दयानन्द की गमनागमन तालिका के अनुसार इस नगर में वे आठ बार आये थे।

१४. स्वामीजी के फर्रूखाबाद के भक्तों में बाबू दुर्गाप्रसाद, कालीचरण रामचरण, जगन्नाथप्रसाद तथा सेठ निर्भयराम के नाम उल्लेखनीय हैं। इन चारों को अत्यन्त विश्वसनीय जानकर स्वामीजी ने अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का सदस्य मनोनीत किया था।

१५. गंगा के तटवर्ती नगरों में मुख्य स्नान-घाटों पर सेठ-साहूकारों ने यात्रियों और स्नानार्थियों की सुविधा के लिए तिबारे व बरामदे आदि बनवा दिये थे। इन्हें ही 'विश्रान्त' कहा जाता है। अपनी अवधूतावस्था में स्वामीजी फर्रूखाबाद, कानपुर, प्रयाग तथा मिर्ज़ापुर आदि नगरों में प्रायः इन्हीं विश्रान्तों में निवास करते थे।

१६. पं. कृपाराम आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान पं. बुद्धदेव विद्यालंकार के नाना थे।

१७. भारतेन्दुकालीन लेखकों में पं. बालकृष्ण भट्ट का नाम प्रमुख था। वे सफल निबन्धकार तथा पत्रकार थे। सनातन मतानुयायी होने पर भी धार्मिक और सामाजिक सुधारों में वे स्वामी दयानन्द से एकमत थे।

१८. स्वामी दयानन्द सात बार मेरठ आये थे। द्रष्टव्य-मेरठ और स्वामी दयानन्द, १९७३, ले. विश्वम्भरसहाय प्रेमी

१९. विदुषी रमाबाई-मूलतः कर्नाटक के ब्राह्मण परिवार में जन्मी रमाबाई के विस्तृत परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक "महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' देखें।

२०. यह उनका अन्तिम मेरठ आगमन थ। इसकी अवधि २ अक्टूबर १८८० से ६ अक्टूबर १८८० तक की थी।

२१. अंग्रेज़ी सीखकर यूरोप में धर्म प्रचारार्थ जाने का सुझाव स्वामीजी को कलकत्ता में ब्राह्म नेता केशवचन्द्र सेन ने भी दिया था। स्वामीजी स्वदेश के सुधार को प्राथमिकता देते थे। अतः अंग्रेजी सीखना उन्होंने गौण माना।

२२. यह फर्रूखाबाद की घटना है। नगर की मुख्य सड़क पर कोई मढ़िया (छोटा देवल मन्दिर) था। किसी जोशीले आर्यसमाजी ने स्वामीजी से कहा कि सिटी मैजिस्ट्रेट आपके परिचित हैं। उन्हें कहकर इस क्षुद्र मन्दिर को बीच रास्ते से हटवा दें। स्वामीजी ने दो टूक उत्तर देकर कहा, "मैं ईंट-पत्थरों से बने मन्दिरों को हटाने में विश्वास नहीं रखता। मैं तो लोगों के मनों से जड़-पूजा के विश्वास को खत्म करना चाहता हं।"

अध्याय ११

स्वामी दयानन्द राजस्थान में

(अ) अजमेर

अजमेर के पादरी ग्रे तथा डाक्टर हसबैण्ड[1] से स्वामी दयानन्द का लिखित शास्त्रार्थ नवम्बर १८७८ में हुआ था। इस शास्त्रार्थ का विस्तृत वृत्तान्त पं. लेखराम द्वारा लिखित स्वामीजी के जीवनचरित (प्रथम संस्करण, पृ. ७३८-७४२) में छपा है। अजमेर के इस शास्त्रार्थ वृत्तान्त को अंग्रेज़ी पत्र **'थियोसाफिस्ट'** ने जनवरी १८८० के अंक में प्रकाशित किया। इसके साथ ही पत्र के सम्पादक की टिप्पणी भी छपी। सम्पादक ने लिखा, "पादरी लोग भारत में चतुराई से काम लेते हैं। सार्वजनिक सभाओं में तो भारतीय विद्वानों से शास्त्रार्थ करने से कतराते हैं जबकि निम्न और दलित वर्ग के लोगों को बहका कर उनका धर्मान्तरण कराते है।" पादरी ग्रे ने भी **'थियोसोफिस्ट'** के मार्च १८८० के अंक में उक्त शास्त्रार्थ के बारे में अपने विचार प्रकाशित कराये। अजमेर के इस शास्त्रार्थ का एक परिणाम यह निकला कि अमृतसर के तेरह ईसाइयों ने इस मत का त्यागकर सनातन आर्य धर्म को स्वीकार कर लिया। यह समाचार **'देशहितैषी'** के आषाढ़ सं. १६४० वि. के अंक में छपा था। **'आर्यसमाचार'** मेरठ (आषाढ़ १६३८ वि.) ने शुद्धि विषयक एक अन्य समाचार में बताया कि रुड़की के ईसाई अनाथालय के भूतपूर्व उपप्रबन्धक मि. मार्टिन लूथर ने स्वपत्नी सहित ईसाई मत को त्याग कर वेद मत को ग्रहण किया है। **'आर्यसमाचार'** मेरठ ने आश्विन १६३७ वि. के अंक में बस्ती ज़िले के द्वितीय श्रेणी के पुलिस इंसपैक्टर मि. जॉन मिण्टगुमरी हैमिल्टन के आर्य धर्म स्वीकार करने के समाचार को छापा। वस्तुतः ईसाइयत अंगीकार करने के पहले वह हिन्दू ही था। यह उनका स्वधर्म में पुनरागमन था।

(आ) स्वामी दयानन्द पुष्कर के कार्तिकी मेले में

कार्तिक पूर्णिमा के दिन पुष्कर (जिला अजमेर) में बड़ा मेला प्रतिवर्ष होता है। स्वामीजी मुख्य पर्व पूर्णिमा से दो दिन पहले कार्तिक शु. त्रयोदशी १६३५ वि. को पुष्कर आए और महाराजा जोधपुर के घाट पर नाथजी के दरीचे (बरामदा) में स्थिति की। यहां स्वामीजी ने एक विज्ञापन प्रकाशित कराया जिसमें जिज्ञासुजनों से अनुरोध किया गया था कि वे सत्य धर्म के निर्णय के लिए स्वामी दयानन्द के निवास पर आएं तथा सत्यासत्य को जानकर मानव जीवन को सार्थक करें। यह विज्ञापन **'भारतसुदशा प्रवर्त्तक'** के १० जनवरी १८८२ के अंक में छपा।

पुष्कर से स्वामीजी अजमेर आए और सेठ रामप्रसाद के बाग में ठहरे। वहां दिये गये उनके व्याख्यानों का विवरण **'भारतसुदशा प्रवर्त्तक'** (सं. ३४ सन् १८८२ अप्रैल) में छपा। इससे ज्ञात होता है कि उनके प्रवचन सेठ गजमल की हवेली[३] में हुए तथा उन्होंने ईश्वर, वेद, वर्णाश्रम, विदेशगमन, भक्ष्याभक्ष्य आदि विषयों पर अपने विचार रखे। उनके व्याख्यानों में नगर के प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित रहते थे जिनमें मसूदा के राव बहादुरसिंह, मुंशी अमीचन्द जज, पं. भागराम न्याय आयुक्त तथा इंजीनियर सरदार भगतसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। **'आर्यदर्पण'** (जून १८८०) ने इन व्याख्यानों की चर्चा करते हुए लिखा कि पादरी ग्रे तथा मिशन अस्पताल के डा. हसबैण्ड ने स्वामीजी से बातचीत की है। आगे चलकर स्वामीजी का पादरी साहब से शास्त्रार्थ भी हुआ।[४] अजमेर से मसूदा के लिए स्वामीजी के प्रस्थान का समाचार **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** ने जून १८८२ के अंक में छापा।

(इ) मसूदा (राजस्थान) में जैन मुनि से शास्त्र-चर्चा

अजमेर जिले में मसूदा राठौड़ राजपूतों की एक वड़ी जमींदारी थी, जहां के शासक को 'राव' का खिताब मिला हुआ था। इस जागीर के जागीरदार ठाकुर बहादुरसिंह स्वामी दयानन्द के अद्वितीय भक्त थे। उनके आग्रह को स्वीकार कर स्वामीजी मसूदा जैसे छोटे ग्राम में एकाधिक बार आये[५] तथा यहां के विभिन्न मतावलम्वी निवासियों और ठाकुर साहब को अपने वचनामृतों से कृतार्थ किया। यहां के लोगों में वैष्णव मतावलम्बियों के अतिरिक्त जैन मत के

अनुयायी भी प्रचुर संख्या में थे। ये राजस्थानी जैन ओसवाल नाम से जाने जाते हैं। इनमें पढ़े-लिखे तथा राजकार्य में तत्पर लोग बहुसंख्यक थे और आज भी हैं।

स्वामी दयानन्द का मसूदा में द्वितीय बार का आगमन २३ जून १८८१ को हुआ। ५ जुलाई को राव बहादुरसिंह ने स्थानीय जैन वर्ग के लोगों को बुलाया और कहा कि वें अपने किसी सम्मानित जैन साधु को स्वामीजी के समीप लाएं ताकि धर्म चर्चा और सत्यासत्य का निर्णय हो सके। इसी अवधि में जैन साधु सिद्धकरण[6] चातुर्मास्य के लिए मसूदा आए थे। स्वामीजी से इनकी प्रथम भेंट गांव के बाहर भ्रमण के लिए जाते समय हुई। राव साहब ने जब साधुजी से मौखिक रूप से स्वामीजी से शास्त्रालाप करने के लिए कहा तो वे तैयार नहीं हुए। इसके बाद स्वामीजी ने कुछ लिखित प्रश्न उक्त साधु को समाधानार्थ भेजे। जो प्रश्न स्वामीजी द्वारा भेजे गये थे वे **'देशहितैषी'** (अजमेर) के ज्येष्ठ १६३८ वि. के अंक में छपे। इनमें मुख्य दो प्रश्न थे-जैन साधुओं का मुख पर पट्टी बांधना क्यों उचित है तथा बिना उबाले पानी को पीने में क्या दोष है? 'देशहितैषी' के श्रावण १६३८ वि. के अंक में साधु सिद्धकरण द्वारा उक्त प्रश्नों के उत्तर को प्रकाशित किया गया। इसी पत्र के भाद्रपद १६३८ वि. के अंक में साधु द्वारा प्रेषित उत्तरों पर स्वामीजी की समीक्षात्मक टिप्पणी छपी जिसमें मुख पर पट्टी बांधने के दोषों की चर्चा थी। इस लिखित शास्त्रार्थ[7] का स्थानीय जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। **'देशहितैषी'** ने अपने आश्विन १६३८ वि. के अंक में स्वामीजी के अन्तिम उत्तर को छाप कर इस वाद को समाप्त किया।

मसूदा के इस शास्त्रार्थ का एक परिणाम यह निकला कि जैन मत में आस्था रखने वाले कोठारी, चोरड़िया, भाबरा, मेहता आदि वर्गों के अनेक जैनों ने स्वामीजी से यज्ञोपवीत धारण कर वैदिक धर्म की दीक्षा ली। ६ अगस्त १८८१ को मसूदा ग्राम के निकट की सोनमगरी नामक वनस्थली में जैनों तथा इतर जातियों के लोगों का यज्ञोपवीत संस्कार, हवन और ब्रह्मभोज पूर्वक सम्पन्न हुआ। जैनों द्वारा उपनयन संस्कार कराने का यह वृत्तान्त **'आर्यदर्पण'** (अक्टूबर १८८१) तथा **'भारतसुदशा प्रवर्त्तक'** (दिसम्बर १८८१) में तो प्रकाशित हुआ ही, कलकत्ता के प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक **'भारतमित्र'** ने ८

दिसम्बर १८८१ के अंक में इस समाचार को प्रमुखता देकर छापा। पत्र का कहना था कि विद्वानों के व्याख्यानों का ऐसा ही प्रभाव होता है तभी तो स्थान मसूदा जिला अजमेर में स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों को सुनकर पैंतीस मनुष्यों ने जैन मत छोड़कर वैदिक धर्म प्रेम से अंगीकार किया।

मसूदा में कबीरपन्थी से वार्तालाप

१८८१ के अगस्त मास में जब स्वामीजी मसूदा (अजमेर) में विराजमान थे, ब्यावर से एक कबीरपन्थी साधु धर्म चर्चा के लिए स्वामीजी के निकट आया। दोनों में कबीर और कबीरपन्थ को लेकर वार्तालाप हुआ। इसे **'देशहितैषी'** (खण्ड १, संख्या ८) ने प्रकाशित किया था।

(ई) स्वामी दयानन्द का जयपुर आगमन

१४ दिसम्बर १८७८ को स्वामीजी के जयपुर आने का समाचार लाहौर के उर्दू पत्र **'कोहेनूर'** ने २५ दिसम्बर १८७८ के अंक में छापा। पत्र ने लिखा कि स्वामीजी यहां ढढ्ढा के बाग़ में ठहरे हैं। अभी तक महाराजा से उनकी भेंट नहीं हुई है। **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** में थोड़े विस्तार से यह समाचार छपा। इस पत्र ने लिखा कि स्वामीजी के व्याख्यान अचरोल ठाकुर की हवेली में होते हैं। दस दिन तक जयपुर में ठहरकर स्वामीजी रेवाड़ी चले गये। वहां से उन्हें हरिद्वार के कुम्भ मेले में जाना था। (सन् १८८२, मास का उल्लेख नहीं)

(उ) स्वामी दयानन्द चित्तौड़ में

२७ अक्टूबर १८८१ को स्वामी दयानन्द जब चित्तौड़ पहुंचे तो वहां मेवाड़ के महाराणा की ओर से लार्ड रिपन (वायसराय तथा गवर्नर जनरल) के आगमन के उपलक्ष्य में दरबार का आयोजन किया गया था। इस ऐतिहासिक नगर में स्वामीजी के निवास का विवरण **'आर्य समाचार'** (माघ १९३८ वि.) तथा **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** (जनवरी १८८२) ने विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया। मेवाड़ राज्य की ओर से स्वामीजी के निवास की व्यवस्था की गई तथा व्याख्यानों का सिलसिला चला। महाराणा सज्जनसिंह स्वयं स्वामीजी से मिलने आए और एक दिन अपने निवास पर उन्हें आमंत्रित किया। यह

सारा विवरण **'चित्तौड़ का आनन्ददायक समाचार'** शीर्षक से इन पत्रों ने छापा। चित्तौड़ से चलकर स्वामीजी इन्दौर आए और लगभग एक सप्ताह ठहरे। यहां के नरेश महाराजा तुकोजीराव होल्कर उनसे मिलना चाहते थे किन्तु उन दिनों उनके राजधानी में न होने के कारण यह भेंट नहीं हो सकी। यहां से स्वामीजी ने बम्बई के लिए प्रस्थान किया। इन्दौर के ये समाचार **'आर्यसमाचार'** मेरठ ने माघ १९३८ वि. के अंक में प्रकाशित किये।

(ऊ) स्वामी दयानन्द का उदयपुर निवास

बम्बई की दूसरी बार की यात्रा समाप्त कर उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह[९] के विशेष आग्रह के कारण स्वामीजी ११ अगस्त १८८२ को उदयपुर आ गए। यहां उनका निवास पर्याप्त समय तक रहा। **'मोहन-चन्द्रिका'** नामक मासिक पत्र ने उनके उदयपुर प्रवास का विवरण विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया। इस पत्र के अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर १८८२ तथा जनवरी १८८३ के छह अंकों में यह वृत्तान्त छपा। इसमें स्वामीजी के गुलाबबाग स्थित नवलखा महल में विराजने, महाराणा से मुलाकात, महाराणा का स्वामीजी से विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन आदि प्रसंग विस्तार से उल्लिखित हुए। कलकत्ता के **'भारतमित्र'** ने ३१ मई १८८३ के अंक में उदयपुर निवास के दौरान स्वामीजी द्वारा अपनी वसीयत (स्वीकार-पत्र) लिखवाने और उसे मेवाड़ की राजसभा द्वारा पंजीकृत कराने का वृत्तान्त छापा।

(ए) शाहपुरा (राजस्थान) में स्वामी दयानन्द

उदयपुर के पश्चात् स्वामीजी के शाहपुरा[१०] में आने का समाचार **'देश-हितैषी'** (चैत्र १९४० वि.) ने प्रकाशित किया। स्वामीजी उदयपुर से नींबाहेड़ा और चित्तौड़ होते हुए ८ मार्च १८८३ को शाहपुरा आए। शाहपुरा के राजाधिराज नाहरसिंह[११] ने न केवल स्वामीजी का समुचित आतिथ्य किया, उनके उपदेशों को अवधानपूर्वक सुना तथा अपनी शासन-व्यवस्था में उनके निर्देशों का यथाशक्य पालन किया। यहां से विदा होते समय राजाधिराज ने स्वामीजी को जो मान-पत्र दिया उसको कलकत्ता के **'भारतमित्र'** ने १९ जुलाई १८८३ के अंक में पूरा प्रकाशित किया।[१२]

(ऐ) जोधपुर में स्वामी दयानन्द

जोधपुर स्वामी दयानन्द की जीवन-यात्रा का अन्तिम पड़ाव था। वे यहां साढ़े चार मास तक रहे। उन्होंने यहां के शासक[13] और शासित दोनों को उद्‌बोधन दिया। विशेष रूप से राजन्य वर्ग को अपना नैतिक जीवन सुधारने के लिए कहा। उन्हें राग-रंग, वेश्यासंग आदि बुराइयों को छोड़कर सर्वात्मना प्रजाहित के लिए स्वयं को समर्पित करने के लिए आदिष्ट किया। किन्तु ऐसा लगता है, ये बातें बहरे कानों में पड़ीं। इससे पहले कि १ या २ अक्टूबर १८८३ को स्वामीजी यहां से अपनी अगली मंज़िल के लिए प्रस्थान करते, उनका जीवन समाप्त कर देने के लिए षड्यंत्र रचा गया जिसमें षड्यंत्रकारियों को सफलता भी मिली।

अजमेर के आर्य पुरुषों ने तो स्वामीजी को जोधपुर जाने के लिए मना ही किया था, किन्तु सत्य, न्याय और धर्म का सर्वत्र उपदेश देने वाले स्वामी दयानन्द के लिए यह कब सम्भव था कि वे विपरीत परिस्थितियों की आशंका से अपने कार्यक्रम को टाल देते। **'देशहितैषी'** के आषाढ़ सं. १८४० के अंक में हम पढ़ते हैं कि रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मणराव देशमुख (सहायक कलेक्टर खानदेश) योग विद्या सीखने के लिए स्वामीजी के साथ जोधपुर गए हैं।

२६ सितम्बर १८८३ की रात को स्वामीजी का स्वास्थ्य बिगड़ा और दूसरे दिन उनकी शारीरिक स्थिति अधिक बिगड़ गई। **'आर्य समाचार'** ने लिखा कि उनके उदर शूल में कोई कमी नहीं है, अपितु दस्त अधिक होने लगे हैं। इसी पत्र ने (पृ. २०६) पुनः लिखा कि डॉ. अलीमर्दान की चिकित्सा को लेकर अनेक लोग अनेक प्रकार की शंका करते हैं।[14] अजमेर से प्रकाशित होने वाले **'देशहितैषी'** ने डॉ. अलीमर्दान द्वारा दी गई विरेचन औषधि को लेकर लोगों की आशंका को अभिव्यक्ति दी। अब तक देशवासी स्वामीजी के रुग्ण होने तथा रोग के भयंकर रूप ले लेने की बात नहीं जान सके थे। मौलवी मोहम्मद मुरादअली[15] द्वारा सम्पादित तथा अजमेर से प्रकाशित **'राजपूताना ग़जट'** में अजमेर के एक आर्य सभासद जेठमल सोढ़ा ने १२ अक्टूबर १८८३ को स्वामीजी के रोग का समाचार पढ़ा और अजमेर आर्यसमाज के सदस्यों के परामर्श से वह स्वामीजी की दशा को जानने के लिए

जोधपुर गया। अजमेर के पं. मुन्नालाल ने अजमेर में स्वामीजी की अन्तिम स्थिति का वृत्तान्त 'भारतमित्र' में प्रकाशित कराया। ३० नवम्बर १८८३ को स्वामीजी का देहपात हो गया। उनके स्वीकार-पत्र के अनुसार परोपकारिणी सभा के उपमंत्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या[१६] ने उनके वस्त्र, पुस्तक आदि को स्वाधिकार में ले लिया। यह समाचार भी कलकत्ता के 'भारतमित्र' ने प्रकाशित किया।

पाद टिप्पणियां

१. डॉ. हसवैण्ड ईसाई मिशन के अन्तर्गत चिकित्सक थे। इनके नाम का हसवैण्ड मेमोरियल हाई स्कूल अजमेर में आज भी चल रहा है।

२. स्वामीजी का यह पुष्कर प्रवास ७ नवम्बर १८७८ से १४ नवम्बर १८८० तक रहा।

३. सेठ गजमल की हवेली अजमेर के कड़क्का चौक में थी।

४. पादरी ग्रे से हुए इस शास्त्रार्थ के विवरण के लिए इस लेखक द्वारा सम्पादित दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह (२०२७ वि.) का 'शास्त्रार्थ-अजमेर' शीर्षक प्रकरण पढ़ें। 'आर्य-दर्पण' ने शास्त्रार्थ विवरण को जून १८८० के अंक में प्रकाशित किया था। इस विवरण के लेखक मुंशी समर्थदान थे।

५. स्वामीजी का मसूदा आगमन तीन बार हुआ था।

६. साधु सिद्धकरण जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय (स्थानकवासी) के थे। इस मत के साधु मुख पर श्वेत पट्टी बांधते हैं।

७. मसूदा में जैन साधु से हुए शास्त्रार्थ का विवरण दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह (पृ. १७२-१८६) में पढ़ें।

८. अचरोल (जयपुर) के ठाकुर रणजीतसिंह स्वामीजी के अनन्य भक्त थे। परिचय के लिए 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' देखें।

९. महाराणा सज्जनसिंह के विस्तृत परिचय के लिए पाद टिप्पणी संख्या ८ में निर्दिष्ट पुस्तक देखें।

१०. शाहपुरा (वर्तमान जिला भीलवाड़ा) के शासक उदयपुर के राज-परिवार के ही थे। बादशाह शाहजहां ने उन्हें पृथक् राज्य का अधिकार दिया था। अतः उस राज्य की राजधानी शाहपुरा कहलाई। अंग्रेजों ने भी शाहपुरा को स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिया था।

११. राजाधिराज नाहरसिंह के विशेष परिचय के लिए पाद टिप्पणी संख्या ८ में निर्दिष्ट ग्रन्थ देखें।

१२. इस मान-पत्र का मूल पाठ दयानन्द दिग्विजयार्क (खण्ड २) तथा पं. लेखराम रचित जीवनरचित में दिया गया है।

१३. तत्कालीन जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के परिचय के लिए पाद टिप्पणी संख्या ८ में निर्दिष्ट ग्रन्थ देखें।

१४. विस्तार के लिए इस लेखक के ग्रन्थ 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' का 'विष प्रकरण' शीर्षक अध्याय देखें।

१५. मौलवी मोहम्मद मुरादअली का आत्म वृत्तान्त (मूलतः उर्दू में) कुछ समय पहले **'दैनिक राजस्थान पत्रिका'** जयपुर ने धारावाही प्रकाशित किया था।

१६. पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या का विस्तृत वृत्त पाद टिप्पणी संख्या ८ में निर्दिष्ट पुस्तक में देखें।

अध्याय १२

प्रकीर्ण (फुटकर) प्रसंग

(क) थियोसोफिकल सोसाइटी से सम्बन्धों का बनना-बिगड़ना

१० अप्रैल १८७५ को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना हुई। उसके कुछ महीने पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका के महानगर न्यूयार्क में थियोसोफिकल सोसाइटी की नींव पड़ी।[1] इसके संस्थापक थे अमरीकी सेना के एक अवकाश प्राप्त कर्नल एच.एस.ऑल्काट[2] तथा एक रूसी महिला मैडम एच.पी. ब्लैवेट्स्की[3]। जब एक गुजराती यात्री[4] ने इन दोनों को स्वामी दयानन्द के विचारों और कार्यों का परिचय दिया तो ये लोग उनसे भेंट करने के लिए तैयार हुए और भारत आने का मन बनाया। १८७६ में भारत आने के पहले उनका स्वामीजी से विशद पत्र-व्यवहार हुआ जिसमें उन्होंने वेदों और आर्य धर्म के प्रति निष्ठा व्यक्त की तथा ईसाइयत के प्रति अपनी विरक्ति प्रकट करने में भी संकोच नहीं किया। १८ फरवरी १८७८ को न्यूयार्क से भेजे एक पत्र को **'आर्य मैगज़ीन'** (खण्ड १, सं. ३, पृ. ५४) ने प्रकाशित किया। **'विद्याप्रकाशक'** नामक पत्र ने अपने जनवरी १८७६ के अंक में एक संक्षिप्त समाचार छाप कर यह संकेत दिया कि थियोसोफिस्ट नेताओं ने मुम्बई आर्यसमाज के प्रधान हरिश्चन्द्र चिन्तामणि तथा स्वामी दयानन्द से नियमित पत्र-व्यवहार किया है। अन्ततः कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की लन्दन से चलकर जलमार्ग से १६ फरवरी १८७६ को बम्बई पहुँचे जहाँ की आर्यसमाज ने उनके निवास तथा आतिथ्य का प्रबन्ध किया। **'आर्यवर्धिनी पत्रिका'** ने इन लोगों के बम्बई निवास का उल्लेख करते हुए लिखा कि इनका खान-पान भारतवासियों की तरह है और ये मद्य-मांस का व्यवहार नहीं करते। कलकत्ता के **'इण्डियन-मिरर'** ने भी थियोसोफी के नेताओं के भारत आगमन की सूचना छापी जिसे पंजाब के उर्दू पत्र **'आफताब-ए-पंजाब'** ने उद्धृत किया और लिखा कि

ये लोग पण्डित दयानन्द सरस्वती से वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आए हैं।

जब कर्नल और मैडम बम्बई आए उस समय स्वामीजी पश्चिमोत्तर प्रदेश (उत्तरप्रदेश) के भ्रमण पर सहारनपुर तथा मेरठ की ओर गए हुए थे। ये दोनों स्वामीजी से मिलने सहारनपुर आए और उसके बाद स्वामीजी के साथ ही मेरठ आ गए। आर्यसमाज मेरठ ने इन विदेशी अभ्यागतों के स्वागत-सत्कार की व्यवस्था की तथा ५ मई १८७९ को कर्नल ऑल्काट के व्याख्यान का आयोजन किया। शाहजहांपुर के मासिक पत्र **'आर्यदर्पण'** ने अपने अगस्त १८७९ के अंक में कर्नल के इस भाषण का सार-संक्षेप प्रकाशित किया। मूल व्याख्यान अंग्रेजी में था[४] और राय मूलराज ने उसका उर्दू अनुवाद जनता के लिए किया था। इस अवसर पर स्वामीजी तथा श्रीमंती ब्लैवेट्स्की ने भी अपने संक्षिप्त विचार रखे। अब तक थियोसोफिस्ट नेताओं के प्रति स्वामीजी के विचार आदर एवं सदाशयतापूर्ण ही थे क्योंकि भारत में आकर उन्होंने वेद और आर्य धर्म के प्रति अपनी आस्था को प्रकट करने के साथ-साथ ईसाइयत के विश्वासों में अपनी अरुचि को व्यक्त करने में संकोच नहीं किया था। थियोसोफिस्टों के प्रति अपने सद्भावनायुक्त विचारों को स्वामीजी ने आर्यसमाज शाहजहांपुर के मंत्री के नाम एक पत्र में लिखा। ८ मई १८७९ को मेरठ से भेजे गए इस पत्र को शाहजहांपुर के **'आर्यदर्पण'** (अगस्त १८७९), **'विद्याप्रकाशक'** (अगस्त १८७९) तथा मेरठ के **'आर्य-समाचार'** (ज्येष्ठ १९३६ वि.) ने शब्दशः उद्धृत किया था।

धीरे-धीरे स्वामीजी और कर्नल तथा मैडम के सम्बन्धों में वैचारिक मतभेद उभरने लगा। समय के साथ यह स्पष्ट होता गया कि थियोसोफिस्ट नेता भारत में अपनी विचारधारा को प्रसारित करने में आर्यसमाज की सहायता लेना चाहते हैं। वस्तुतः वेदों और वेद प्रतिपादित विचारों में उनकी वैसी आस्था नहीं थी जिसकी अपेक्षा स्वामी दयानन्द को थी। ये लोग योग के नाम पर अनेक प्रकार के चमत्कारपूर्ण कृत्यों का समर्थन करते थे तथा अवसर आने पर मैसमैरिज्म और हिप्नोटिज्म जैसी क्रियाओं का सहारा लेकर जन सामान्य को भ्रमित करते थे। बाद में तो उन्होंने अपने आपको कभी बौद्ध बताया तथा कभी अनीश्वरवादी घोषित कर दिया। स्वामीजी को

अपने इन सहयोगियों का यह वैचारिक स्वेच्छाचार पसन्द नहीं आया। फलतः दोनों पक्षों में अविश्वास तथा आशंका के भावों में वृद्धि हुई। मतभेद का प्रारम्भिक संकेत **'आर्यसमाचार मेरठ'** (कार्तिक सं. १६३७ वि.) में प्रकाशित एक सूचना में मिलता है जिससे यह आभास होता है कि कर्नल और मैडम अपने ईश्वर विषयक विचारों को स्वामीजी के समक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट करने में घबराहट महसूस करते हैं, साथ ही शंका-समाधानपूर्वक अपने संशयों को निवृत्त करने में भी रुचि नहीं रखते।

कर्नल और मैडम ने भारत में आते ही कलकत्ता के अंग्रेजी पत्र **'इण्डियन स्पैक्टेटर'** (२४ जुलाई १८७८) में स्पष्ट कर दिया था कि हम न तो बौद्ध हैं और न ईसाई। हम न कथित सनातन पुराण-मत के अनुयायी हैं अपितु हम आर्यसमाजी हैं। इस स्पष्ट घोषणा के पश्चात् यदि स्वामीजी उन पर अपना प्रगाढ़ विश्वास प्रकट करने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या था? इस विश्वास को तोड़ने का जिम्मा थियोसोफिस्टों के सिर पर ही रहेगा क्योंकि अब दो वर्ष बाद वे स्वयं को अनीश्वरवादी प्रसिद्ध करते हैं। धीरे-धीरे दोनों पक्षों के बीच की खाई बढ़ने लगी तो स्वामीजी ने इन लोगों से कहा कि वे स्वयं शीघ्र ही बम्बई आने वाले हैं। वे उनसे वहां मिलें और परस्पर के मतभेदों को वार्तालाप द्वारा सुलझा लें। स्वामीजी के इस अनुरोध की ओर न तो कर्नल ने ध्यान दिया और न मैडम ने। कर्नल ऑल्काट तो उस समय बम्बई से बाहर चले गए और मैडम ने स्वामीजी से मिलने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। अन्ततः स्वामीजी ने एक सार्वजनिक सभा में आरम्भ से लेकर अब तक के आर्यसमाज तथा थियोसोफी के सम्बन्धों का खुलासा किया और आगे से इन दोनों संस्थाओं के सम्बन्धों की समाप्ति की घोषणा कर दी।[६]

धीरे-धीरे थियोसोफिस्टों के चमत्कारों और योग के नाम पर मिथ्या बातों की पोल खुलने लगी। अजमेर के **'देशहितैषी'** (मार्च १८८४) ने **'स्टेट्समैन'** के हवाले से लिखा कि कर्नल ने महाराजा जम्मू की मैसमैरिज्म द्वारा चिकित्सा करने का वायदा किया था। वे सात दिन तक जम्मू में रहकर कुछ झाड़-फूंक करते रहे, किन्तु महाराजा को कोई लाभ नहीं हुआ। उलटे उनमें अधिक

निर्बलता आ गई। लाहौर के उर्दू पत्र **'आफताब-ए-पंजाब'** (२ अप्रैल १८८३) ने लिखा कि इन लोगों ने लाहौर में चमत्कार दिखाने की कई बातें कीं किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इसी समाचार को **'देशहितैषी'** (वैशाख १६४० वि.) ने उद्धृत किया और लिखा कि "ये लोग भारतवासियों को सत्यमार्ग से हटाकर कपोल-कल्पित चमत्कारों और भूत-प्रेतों की दुनिया में ले जाना चाहते हैं।"

जब स्वामीजी ने २६ मार्च १८८२ को बम्बई में सार्वजनिक व्याख्यान देकर आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध समाप्त होने की घोषणा की और विगत की समस्त घटनाओं का ब्यौरा देते हुए **'थियोसोफिस्टों की गोलमान पोलपाल'** शीर्षक पुस्तिका प्रकाशित कर दी तो सोसाइटी के संस्थापकों को अपनी सफाई देने की ज़रूरत महसूस हुई। बम्बई से इनका मासिक मुख पत्र **'दि थियोसोफिस्ट'** पहले से ही छपने लगा था। इस पत्र के जुलाई १८८२ के परिशिष्टांक में सोसाइटी के संस्थापकों ने स्वामीजी द्वारा उठाये गये मुद्दों का जैसे-तैसे जवाब दिया। **'थियोसोफिस्ट'** में छपी यह सफाई अपर्याप्त थी। लाहौर से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी मासिक **'दि आर्य'** के सम्पादक रतनचन्द बेरी ने इसका समुचित उत्तर दिया। एक अन्य विस्तृत उत्तर आर्यसमाज रुड़की के मंत्री पं. उमरावसिंह ने ३ अक्टूबर १८८२ को तैयार किया जो पुस्तकाकार छपा।[७]

आर्यसमाज और थियोसोफी के बीच पनपे मतभेद और अन्ततः सम्बन्ध-विच्छेद ने दोनों संस्थाओं में व्याप्त भ्रम की स्थिति को समाप्त कर दिया तथापि थियोसोफिस्ट नेताओं की यह सदाशयता ही थी कि मई १८८२ के **'थियोसोफिस्ट'** में उन्होंने एक सूचना छापकर यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि दोनों संस्थाओं में दूरी बढ़ी है किन्तु हम अपने पत्र में स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज के विरोध में कोई निन्दात्मक बात नहीं छापेंगे। उन्होंने स्वामी दयानन्द को आर्य संस्कृति का एक वफादार योद्धा बताया तथा यह स्पष्ट किया कि उनके लिए भारत का हित सर्वोपरि है, थियोसोफी का हित चिन्तन उनकी प्राथमिकता नहीं है। स्वामीजी के निधन पर कर्नल तथा मैडम दोनों ने दिवंगत महापुरुष को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

अध्ययन के लिए विशेष सामग्री

१. पं. लेखराम लिखित स्वामी दयानन्द के जीवनचरित में अध्याय ७, परिच्छेद २
२. पं. घासीराम सम्पादित स्वामीजी का जीवनचरित भाग २, परिशिष्ट २
३. डा. भवानीलाल भारतीय लिखित नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती, प्रकरण चतुष्टय
४. दीवान बहादुर हरविलास सारडा लिखित स्वामी दयानन्द का अंग्रेजी जीवनचरित, अध्याय ३२

(ख) 'दि थियोसोफिस्ट' में प्रकाशित स्वामी दयानन्द का आत्म-वृत्तान्त

जैसा कि हम देख चुके हैं कि स्वामी दयानन्द और थियोसोफी मत के संस्थापकों (कर्नल ऑल्काट तथा मैडम ब्लैवेट्स्की) के पारस्परिक सम्बन्ध प्रारम्भ में तो मधुर रहे किन्तु आगे चलकर स्वामीजी को जब यह जानकारी मिली कि वैदिक धर्म और आर्य चिन्तनधारा के प्रति इन लोगों की प्रतिवद्धता अब वैसी नहीं रही है जैसी उनके भारत आगमन के समय थी तो यह स्वाभाविक था कि दोनों पक्षों की दूरी बढ़ती। आर्यसमाज के इतिहास लेखकों तथा स्वामी दयानन्द के जीवनी लेखकों ने इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार से अपने ग्रन्थों में लिखा है। चाहे थियोसोफी और आर्यसमाज एक दूसरे से दूर चले गये किन्तु इन संस्थाओं के संस्थापकों के समीप आने का एक सुखद फल निकला-स्वामी दयानन्द के आत्म वृत्तान्त का आंशिक निबन्धन तथा **थियोसोफिस्ट** पत्र में प्रकाशन।

अप्रैल १८७६ में कर्नल ऑल्काट ने स्वामीजी से अपनी आत्मकथा लिखकर प्रकाशनार्थ **'थियोसोफिस्ट'** में भेजने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने इसे स्वीकार किया और अपने जन्म से लेकर नर्मदा तटवर्ती प्रान्त में भ्रमण तक का वृत्तान्त लिखकर उक्त पत्र में छपने भेजा। मैडम ब्लैवेट्स्की उस समय **'थियोसोफिस्ट'** की सम्पादक थीं अतः उनके द्वारा अनूदित और सम्पादित यह आत्मकथ्य इस पत्र के तीन अंकों (अक्टूबर १८७६ पृ. ६ से १२, दिसम्बर १८७६ पृ. ३६ से ३८ तथा नवम्बर १८८० पृ. २४ से २६ तक) में प्रकाशित हुआ।[८] प्रथम किस्त में जन्म से लेकर ऋषिकेश की यात्रा

तक, दूसरी में टिहरी से लेकर जोशीमठ के भ्रमण तक तथा अन्तिम किस्त में बद्रीनाथ से लेकर नर्मदा तटवर्ती प्रदेश तक भ्रमण का वृत्तान्त छपा। आत्मकथा लेखन का यह सिलसिला आगे नहीं चला और यहीं पर आकर समाप्त हो गया। इसके दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं-(१) दोनों पक्षों में सामंजस्य तथा सौमनस्य का समाप्त हो जाना (२) स्वामीजी की व्यस्तता तथा उस जीवनी को पूरा न कर पाना।

इस आत्म-वृत्तान्त को स्वामीजी के जीवनकाल में ही कुछ अन्य पत्रों ने यथा-तथा उद्धृत किया। पं. लेखराम की सूचना के अनुसार **'थियोसोफिस्ट'** में छपा यह आत्म वृत्तान्त **'भारतसुदशा प्रवर्त्तक'** (कब छपा यह अज्ञात है), **'आर्य अख़बार'** (?) बम्बई, **'रिजेनेरेटर ऑफ आर्यावर्त'**, **'दि आर्य-मैगज़ीन लाहौर'** तथा कलकत्ता के **'पताका'** अख़बार में छपा था। स्वामीजी के निधन के बाद तो **थियोसोफिस्ट** तथा पूना में प्रदत्त आत्मकथापरक व्याख्यान का समन्वित तथा पृथक् रूप अनेक पत्रों ने प्रकाशित किया तथा इसके अनेक पुस्तकाकार संस्करण प्रकाशित हुए।

मासिक पत्र **'दि थियोसोफिस्ट'** का प्रकाशन बम्बई से अक्टूबर १८७६ में आरम्भ हुआ। इसके प्रथम अंक का सम्पादकीय **'नमस्ते'** के अभिवादन से आरम्भ होता है तथा इसी प्रवेशांक में स्वामी दयानन्द की आत्मकथा की पहली किस्त छपी। दिसम्बर १८८० के अंक में कर्नल ऑल्काट का स्वामी दयानन्द से लिया गया एक साक्षात्कार छपा है जिसमें कर्नल ने उनसे योग विषयक प्रश्न पूछे थे। इस प्रसंग को कालान्तर में कर्नल ऑल्काट ने अपनी आत्मकथा **'ओल्ड डायरी लीव्ज'** में उद्धृत किया था। अक्टूबर १८७६ के प्रवेशांक में 'वेदों का काल' (Antiquities of Vedas) शीर्षक एक लेख छपा है। इसमें वेदों के रचना (या आविर्भाव) काल के सम्बन्ध में प्रो. मैक्समूलर के मत की समीक्षा की गई है। साथ ही स्वामी दयानन्द के 'वेदकाल निर्णय' को औचित्यपूर्ण तथा बुद्धिसंगत माना गया है।

अध्ययन तथा सन्दर्भ के लिए विशेष सामग्री

१. आत्मकथा-डा. भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित तथा वैदिक पुस्तकालय अजमेर द्वारा प्रकाशित। १९७५ तथा १९८३ के दो संस्करण।

२. Triumph of Truth or a short Biography of Swami Dayanand Saraswati : By Pt. Durga Prasad, 1908
३. Autobiography of Pandit Dayanand Saraswati-1952, Theosophical Publishing House, Adyar, Madras.
४. स्वामी दयानन्द सरस्वती की कुछ दिनचर्या-द्वितीय संस्करण १८८७
५. Autobiography of Dayanand Saraswati edited by Dr. K.C. Yadav, 1976, 1978, 1987 के तीन संस्करण

इनके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं के अनुवाद।

(ग) स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ लेखन की सम-सामयिक पत्रों में चर्चा

गंगा के तटवर्ती प्रान्त में पैदल भ्रमण करने के दौरान स्वामी दयानन्द ने कुछ छोटे ग्रन्थ लिखे थे। सर्वप्रथम अपने आगरा निवास काल (१८६३-१८६४) में उन्होंने **'सन्ध्या'** की एक लघु पुस्तक छपाई और उसे हरिद्वार के कुम्भ (१८६७) में तथा अन्यत्र वितरित किया। इस सन्ध्या विधि के अन्त में लक्ष्मी सूक्त परिशिष्ट रूप में दिया गया था। कालान्तर में उन्होंने **'भागवतखण्डन'**[९] नामक पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी। इसे भी हरिद्वार के १८६७ के कुम्भ के मेले में बिना मूल्य लिए वितरित किया गया। १८६९ के प्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ को स्वामीजी ने **शास्त्रार्थ तथा सत्धर्म विचार**[१०] शीर्षक से दिसम्बर १८६९ में बनारस के लाइट प्रेस से छपाया। इसकी समीक्षा अनेक पत्रों में छपी थी।

अद्वैतमत खण्डन–स्वामी दयानन्द शांकर अद्वैतवाद का खण्डन करते थे। अद्वैत मत की समीक्षा में उन्होंने **'अद्वैतमत खण्डन'** नामक एक पुस्तक संस्कृत में लिखी तथा उसका हिन्दी भाषानुवाद भी किया। यह पुस्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मासिक पत्रिका **'कवि वचनसुधा'** के दो अंकों में धारावाही प्रकाशित हुई।[११] **'कवि वचनसुधा'** के जिन अंकों में यह छपी वे ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा तथा आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा सं. १९२७ वि. के थे। सम्भवतः यह पुस्तक लघु ट्रैक्ट रूप में भी लाइट प्रेस बनारस से मुद्रित होकर प्रकाशित हुई थी। आज **'कवि वचनसुधा'** के ये अंक वाराणसी में उपलब्ध नहीं हैं। सम्भवतः ब्रिटिश म्यूजियम पुस्तकालय लंदन में मिलें। कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी में भी नहीं हैं।

संस्कार विधि-षोडश संस्कारों की विधि-संस्कार विधि का प्रथम संस्करण एशियाटिक प्रेस बम्बई में छप कर १८७७ में प्रकाशित हुआ था। कलकत्ता से प्रकाशित **'इण्डियन मिरर'** ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा कि "पण्डित दयानन्द सरस्वतीजी ने वेदों के आधार पर संस्कारों की एक पुस्तक तैयार की है। जो लोग मूर्तिपूजा को त्याग कर संस्कर कराना चाहते हैं वे इस पुस्तक की सहायता से सभी सोलह संस्कार कर सकते हैं।" पत्र ने आगे यह भी लिखा कि उसकी सूचना के अनुसार बम्बई के हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने अपने पिता का अन्तिम संस्कर इसी विद्वान् पण्डित की बताई वैदिक रीति से किया था।

वेद भाष्य-जब स्वामी दयानन्द ने चारों वेदों के भाष्य लिखने का विचार किया तो आरम्भ में ऋग्वेद के आरम्भिक मंत्रों का अनेकार्थ देने वाला भाष्य लिखकर समीक्षार्थ कुछ विद्वानों तथा पत्रों को भेजा। कलकत्ता से **'इण्डियन-मिरर'** ने इस पर हर्ष प्रकट करते हुए लिखा-"यदि दयानन्द सरस्वती जैसा विद्वान् पुरुष वेदों का भाष्य करे तो वह वास्तव में एक अनमोल तथा आदर के योग्य काम होगा।"

गोकरुणानिधि-गोकरुणानिधि का प्रथम संस्करण दिसम्बर १८८० में प्रकाशित हुआ था। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक **'भारत मित्र'** ने ५ मई १८८१ के अंक में इसकी समीक्षा करते हुए लिखा-"इस पुस्तक में गौ-वध निषेध में अनेक प्रमाण दिए गए हैं। साथ ही भेड़, बकरी आदि समस्त पशुओं के मांस भक्षण की अवैधता बताई गई है।"

संस्कृत वाक्य प्रबोध-संस्कृत भाषा के प्रचार तथा बालकों में उसको वार्तालाप के रूप में प्रयुक्त करने को प्रोत्साहन देने के लिए स्वामीजी ने **'संस्कृत वाक्य प्रबोध'** नामक एक संवाद-प्रधान पुस्तक लिखी। मुद्रण की असावधानी तथा प्रूफ शोधक के प्रमाद के कारण इसके प्रथम संस्करण में अनेक भूलें रह गईं। इन भूलों के कारणों को न जानकर **शिवराज विजय** के रचयिता पं. अम्बिकादत्त व्यास ने तत्काल **संस्कृत वाक्य प्रबोध** के खण्डन में **'अबोध निवारण'** शीर्षक एक पुस्तक लिखी। इस पर लेखक का नाम नहीं दिया गया था। जब यह पुस्तक समीक्षा के लिए **'हिन्दी प्रदीप'** के सम्पादक पं. बालकृष्ण भट्ट के पास पहुँची तो उन्होंने अपने पत्र के सितम्बर १८८०

के अंक में लिखा–"इसमें दयानन्द के खण्डन का वही पुराना राग गाया गया है, निरा पण्डिताई के ढंग पर।......हम दयानन्द के किसी प्रकार के पक्षपाती नहीं हैं पर निरे संस्कृतज्ञ पण्डितों की सराहना नहीं करते। दयानन्द चाहे बहुत बुरे हों, पर देश के लाभ और सुधार की ओर तो वे वहुत प्रवृत्त हैं।"

कलकत्ता के **'भारतमित्र'** के २६ अगस्त १८८० के अंक में **'अबोध-निवारण'** पर टिप्पणी करते हुए लाहौर के पं. भानुदत्त ने जो कुछ लिखा उसका अभिप्राय था कि "स्वामी दयानन्द वेद विद्या की उन्नति तथा आर्य भाषा की प्रगति के लिए इस समय जो कार्य कर रहे हैं, यदि उसमें बाधा पहुँचाई गई तो इससे देश का अमंगल ही होगा।" इस समीक्षा का सार यही था कि पुराण मत के पण्डितों के लिए यह उचित नहीं है कि **'अबोध-निवारण'** जैसी पुस्तक लिख कर वे स्वामी दयानन्द के महत्त्वपूर्ण सुधार कार्य में बाधक बनते रहें।

विशेष अध्ययन के लिए

१. ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास-पं. युधिष्ठिर मीमांसक कृत १६८३ में प्रकाशित द्वितीय परिवर्धित संस्करण
२. संस्कृतवाक्यप्रबोध का पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित संस्करण, जिसमें अम्बिकादत्त व्यास कृत इस पुस्तक की आलोचना तथा **'एक पण्डित'** नाम से उसका उत्तर दिया गया है।
३. भागवत खण्डनम् का पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित संस्करण (१६६६) तथा डा. भवानीलाल भारतीय द्वारा विस्तृत भूमिका युक्त संस्करण (गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-१६६६ ई.)

(घ) दयानन्द कृत वेद भाष्य पर विद्वानों का मत

स्वामी दयानन्द ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** लिखने के पश्चात् चारों वेदों का संस्कृत भाष्य लिखने का उपक्रम किया। जब वे १८७७ में पंजाब की राजधानी लाहौर आए तो वहां के आर्य सभासदों ने वेदभाष्य के प्रकाशन में आर्थिक सहायता हेतु एक प्रार्थना-पत्र पंजाब सरकार को भेजा। पंजाब

सरकार ने स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की उपयोगिता और गुणवत्ता पर टिप्पणी भेजने के लिए इस प्रार्थना-पत्र को पंजाब विश्वविद्यालय को भेज दिया। तत्पश्चात् वहां से अनेक संस्कृत विद्वानें को दयानन्दीय वेदभाष्य का नमूना सम्मति हेतु भेजा गया। स्वामी दयानन्द द्वारा वेदार्थ के लिए प्रयुक्त ब्राह्मण ग्रन्थों तथा निरुक्त पर आधारित पद्धति की अनदेखी करते हुए इन विद्वानों ने इस वेदभाष्य के प्रतिकूल सम्मति पंजाब विश्वविद्यालय के माध्यम से पंजाब सरकार को भेज दी। जब स्वामीजी को इन विपरीत सम्मतियों को देखने का अवसर मिला तो उन्होंने उनका विस्तृत उत्तर तैयार किया जो आर्यसमाज लाहौर के द्वारा पंजाब विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार को वेदभाष्य विषयक सही तथ्यों की जानकारी कराने के लिए २५ अगस्त १८७७ को भेजा गया। स्वामीजी के वेदभाष्य के समर्थन में शास्त्रीय प्रमाण युक्त इस प्रतिवेदन का अंग्रेजी में अनुवाद तैयार कराया गया। इसे लाहौर के पत्र **'वकील-ए-हिन्द'** ने प्रकाशित किया। इस प्रतिवेदन में स्वामीजी के वेदभाष्य पर आक्षेप करने वाले मि. ग्रिफिथ[१२], मि. टॉनी[१३], पं. गुरुप्रसाद[१४], पं. ऋषिकेश भट्टाचार्य[१५] तथा पं. भगवानदास द्वारा की गई आपत्तियों का समुचित उत्तर दिया गया था।

कलकत्ते का **'इण्डियन मिरर'** ब्रह्मसमाज का पत्र था। तत्कालीन ब्रह्मसमाज वेद प्रमाणवाद के सिद्धान्त को छोड़ चुका था। स्वामीजी के वेदभाष्य से उत्पन्न उक्त विवाद पर उसने अपने दृष्टिकोण को इस पत्र के ४ नवम्बर १८७७ के अंक में प्रस्तुत किया। **'इण्डियन मिरर'** का कहना था कि ''दयानन्द सरस्वती ने अपने अनोखे और उत्तम वेदभाष्य से एक बड़े विवाद को जन्म दे दिया है।'' पत्र ने इसे भिड़ों के छत्ते को छेड़ना कहा। **'इण्डियन-मिरर'** के अनुसार ''वेदों में तो भारत में प्रचलित सभी दर्शनों, सम्प्रदायों तथा मतों के सिद्धान्त बीज रूप में विद्यमान हैं। अतः यदि स्वामी दयानन्द भी एक नया सम्प्रदाय स्थापित कर वेदों का एक और भाष्य तैयार करें तो इस शौक को पूरा करने की इज़ाजत उन्हें मिलनी ही चाहिए।'' इस प्रकार दयानन्द कृत वेदभाष्य पर अपनी स्वतंत्र सम्मति देने के पश्चात् पत्र ने यह स्वीकार किया कि **''प्राचीन एकता के काल की बातों को पुनः स्थापित करने के लिए दयानन्द की चेष्टा कुछ-न-कुछ शुभ परिणाम अवश्य उत्पन्न करेगी।''**

मि. ए.ओ. ह्यूम की वेद विषयक शंका

इण्डियन सिविल सर्विस के अधिकारी तथा कालान्तर में (१८८५ में) इण्डियन नेशनल कांग्रेस के संस्थापक मि. ए.ओ.ह्यूम ने **'थियोसोफिस्ट'** पत्र के मार्च १८८३ के अंक में वेदों के ईश्वरोक्त होने और इसी कारण उन्हें अभ्रान्त मानने का सवाल उठाया तथा शंका रखी कि यदि स्वामी दयानन्द यह घोषित कर दें कि वे जो वेदार्थ लिख रहे हैं या कह रहे हैं वह सब ईश्वर की प्रेरणा का ही परिणाम है तब तो वेदों को अभ्रान्त मानने की उनकी स्थापना को स्वीकार किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। **'भारतमित्र'** ने ह्यूम साहब के इस वक्तव्य को उद्धृत किया तथा लिखा-''हम लोगों को आशा है कि स्वामी दयानन्द (ह्यूम के इस मत) इसका खण्डन कर आर्यसमाज का गौरव बढ़ाएंगे।'' (१४ जुलाई १८८३)

मि. ए. ओ. ह्यूम के वेद विषयक इस आक्षेप का विस्तृत उत्तर स्वामीजी ने जोधपुर से 'भारतमित्र' को भेजा। यह इस पत्र के २ अगस्त १८८३ के अंक में छपा। इसमें स्वामीजी ने अत्यन्त विस्तार में जाकर वेदों के ईश्वरोक्त होने, उनके सर्वविद्यामयत्व तथा निर्भ्रान्त होने का प्रतिपादन किया। साथ ही यह भी लिखा कि मैं ईश्वर नहीं, अपितु ईश्वर का उपासक हूं। यह लिखने की आवश्यकता इसलिए थी क्योंकि मि. ह्यूम अपने पत्र में यह लिख चुके थे कि स्वामीजी यदि स्वयं ईश्वर हों अथवा ईश्वर की प्रेरणा से वेद भाष्य लेखन करें तभी उनका भाष्य निर्भ्रान्त माना जा सकता है।

थियोसोफिस्ट में छपे मि. ह्यूम के वक्तव्य पर इस पत्र के सम्पादक ने भी अपनी ओर से समर्थन रूप में कुछ लिखा था। इस पर स्वामीजी का कहना था कि जो थियोसोफिस्ट लोग स्वयं को कभी अनीश्वरवादी और कभी बौद्ध बतलाते हों तथा भूत-चुड़ैल आदि के विश्वासी हों, उनका वेदों के विरोध में लिखना कुछ असाधारण नहीं है। स्वामीजी ने यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य लिख डाला तथा ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के इकसठवें सूक्त के दूसरे मंत्र तक का भाष्य लिख पाए थे कि ३० अक्टूबर १८८३ को उनका निधन हो गया, फलतः चारों वेदों पर सर्वांगीण तथ आर्ष पद्धति से भाष्य-लेखन का यह अनुष्ठान अधूरा रह गया।

स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य पर कतिपय पठनीय ग्रन्थ

१. वेदभाष्य पद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन, डा. सुधीरकुमार गुप्त, १६८०

२. ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्यानुशीलन-शिवपूजनसिंह कुशवाहा, २००७ वि.

३. शतपथ तथा दयानन्दीय यजुर्वेद भाष्य का तुलनात्मक अध्ययन-वेदपाल वर्णी (अप्रकाशित)

४. महर्षि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य में सामाजिक एवं राजनैतिक सन्दर्भ-परमजीत कौर १६८२

५. महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में समाज का स्वरूप-सत्यव्रत राजेश, २०००

(ङ) सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण) के १२वें समुल्लास पर विवाद

मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास[९६] के आग्रह पर स्वामी दयानन्द ने १८७५ में सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखा[९७]। इसे प्रकाशित कराने का दायित्व राजा साहब ने स्वयं लिया था। कतिपय कारणों से इसमें बारह समुल्लास (अध्याय) ही छपे और इस्लाम तथा ईसाइयत की समीक्षा में लिखे गये १३वें और १४वें समुल्लास छप नहीं सके। १२वें समुल्लास में जैनमत की समीक्षा लिखी गई थी। स्वामीजी ने जैन मत की आलोचना का आधार जिन ग्रन्थों को बनाया था उनके बारे में खुद जैन मतावलम्बियों में भी विवाद था।[९८] एक अन्य बात यह थी कि उस समय तक जैन मत के अनुयायी अन्य मत वालों को अपने ग्रन्थ पठनार्थ देने में संकोच करते थे। प्रायः नहीं ही देते थे। इसलिए जैन मत समीक्षा को जितना विस्तार स्वामीजी देना चाहते थे उतना दे नहीं पाए। उनकी यह जैन मत समीक्षा अत्यन्त संक्षिप्त है तथा इस ग्रन्थ के मात्र १२ पृष्ठों में ही समाप्त हो गई है।

१८७५ में प्रकाशित **'सत्यार्थप्रकाश'** में जैन मत की आलोचना पर सर्वप्रथम आपत्ति उठाने वाला अविभाजित पंजाब का एक जैन मतानुयायी ठाकुरदास भाभड़ा था जो गुजरांवाला नगर (पाकिस्तान) का निवासी था। इसने स्वामीजी को क्रमशः दो पत्र लिखे और उनसे यह जानना चाहा कि **'सत्यार्थप्रकाश'** में उन्होंने जो जैन मत की आलोचना लिखी है उसके लिए

किन आधारभूत ग्रन्थों का प्रयोग किया गया है, इसे स्पष्ट करें, क्योंकि जैन मतावलम्बियों की दृष्टि में उनके द्वारा प्रयुक्त ये ग्रन्थ मान्य नहीं हैं। ठाकुरदास के ये दोनों पत्र लाहौर के हिन्दी पत्र **'मित्र विलास'** (१६ जुलाई १८८०) में छपे। **'मित्र विलास'** के सम्पादक ने इन पर अपनी टिप्पणी भी दी और लिखा कि जैन मत की गलत आलोचना करने के कारण जैन लोग स्वामीजी पर नालिश करने का विचार कर रहे हैं।

आर्यसमाज गुजरांवाला ने ठाकुरदास की आपत्ति को अनुचित मानते हुए **'आर्यदर्पण'** (अप्रैल १८८०) में स्वामी दयानन्द का पक्ष प्रस्तुत किया जिसका सार यह था कि ठाकुरदास में तो इतनी योग्यता ही नहीं है कि वह स्वामीजी द्वारा लिखी गई जैनमत-समीक्षा पर कुछ लिख सके। वस्तुतः यह आपत्ति जैन मत के आचार्य विजयानन्द सूरि (आत्मारामजी) के कहने से उठाई गई है। साथ ही यह भी लिखा कि स्वामीजी कृत जैन मत की आलोचना सत्यासत्य के निर्णय की दृष्टि से लिखी गई है। इसका कोई अन्य अभिप्राय नहीं है। ठाकुरदास के पत्र का उत्तर स्वामीजी की ओर से आर्यसमाज मेरठ के मंत्री ने लिखित रूप में भेज दिया। इन बातों से ठाकुरदास का समाधान न तो होना था और न हुआ। यह विवाद पत्र-व्यवहार के माध्यम से आगे बढ़ता गया और दोनों पक्षों की ओर से चिट्ठियों का सिलसिला जारी रहा। मेरठ से प्रकाशित **'आर्य समाचार'** ने अपने सितम्बर १८८० के अंक में इस पत्र-व्यवहार के बारे में विस्तार से लिखा। इस बीच जैन मत वालों की ओर से **'सत्यार्थप्रकाश'** के जैन मत विषयक समीक्षात्मक बिन्दुओं पर जो आक्षेप किये गये थे उनका विस्तृत उत्तर स्वामीजी ने स्वहस्ताक्षरों से दे दिया जो उर्दू पत्र **'आफताब-ए-पंजाब'** (१३ दिसम्बर १८८०) में छपा।

जैन मतावलम्बियों और विशेषतः ठाकुरदास ने इस मामले को और अधिक तूल देते हुए स्वामीजी को कानूनी नोटिस भेजा और कहा कि यदि वे स्वलिखित जैन समीक्षा को वापिस नहीं लेंगे तथा इसके लिए क्षमा-याचना नहीं करेंगे तो अदालत में उन पर अभियोग दायर किया जाएगा। सम-सामयिक पत्रों ने इस विवाद के गरमाये जाने पर भी अपने विचार लिखे। **'आफताब-ए-पंजाब'** ने १८ फरवरी १८८० के अंक में लिखा कि धार्मिक वादों को सुलझाने के लिए अदालत में जाना अनुचित है। स्वामी दयानन्द ने

जो कुछ लिखा है वह किसी वर्ग का अपमान करने के लिए नहीं लिखा अपितु सत्य और असत्य का निर्णय करना ही उनका लक्ष्य था। लाहौर से प्रकाशित होने वाले **'पंजाबी अख़बार'** (१६ मार्च १८८१) में **'गुजरांवाला से कोई एक'** (पत्र लेखक ने अपना नाम नहीं लिखा) के नाम से एक पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें स्वामी दयानन्द के पक्ष को औचित्यपूर्ण बताया गया था।

जब ठाकुरदास ने ६ फरवरी १८८१ को सचमुच स्वामीजी को कानूनी नोटिस (भारतीय दण्ड संहिता की धारा २६५ के अनुसार) भेज दिया तो समस्त आर्य-जगत् में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इस नोटिस का उत्तर आर्यसमाज मेरठ के मंत्री आनन्दीलाल के हस्ताक्षरों से भेजा गया। यह उत्तर **'आर्य समाचार'** मेरठ के माघ तथा फाल्गुन सं. १६३७ वि. के अंकों में प्रकाशित हुआ।

ठाकुरदास ने अपने द्वारा भेजे गए नोटिस को सर्वत्र प्रचारित करने के लिए समाचार-पत्रों का सहारा लिया। उसने नोटिस के दस्तावेज को **'आफताब-ए-पंजाब'** (१० जनवरी १८८२) में छपवाया और लिखा कि स्वामीजी लाहौर, बनारस, अहमदाबाद अथवा बम्बई किसी नगर में शास्त्रार्थ कर लें। यही नोटिस **'अहमदाबाद समाचार'** के १७ अप्रैल १८८२ के अंक में, **'बड़ौदा वत्सल'** के १८ अप्रैल १८८२ के अंक में तथा **'शमशीर-बहादुर'** (उर्दू) के १२ मई १८८२ के अंक में छपा।

इस प्रकरण की समाप्ति तो तब हुई जब स्वामीजी ने जैनियों द्वारा भेजे गये नोटिस का उत्तर खुद के एक प्रसिद्ध वकील[१६] के द्वारा १८ जून १८८२ को दिलवा दिया। यहां यह लिखना उपयुक्त है कि जब स्वामी दयानन्द ने **'सत्यार्थप्रकाश'** का द्वितीय संशोधित संस्करण तैयार किया तो जैन मत समीक्षा को विस्तार से लिखा। तब तक उन्हें जैन मत के ग्रन्थों का विशद अनुशीलन करने का अवसर मिल चुका था। इन ग्रन्थों को आर्यसमाज बम्बई के तत्कालीन मंत्री सेवकलाल कृष्णदास ने उन्हें उपलब्ध कराया था।

ठाकुरदास भाभड़ा तथा अन्य जैन मतानुयायियों को **'सत्यार्थप्रकाश'** के जैनमत-समीक्षा वाले अंश पर जो आपत्ति हुई उसका एक कारण स्वामीजी द्वारा जैन और बौद्ध मत को एक बताना था। किन्तु यह उपपत्ति स्वामीजी

की मनःप्रसूत नहीं थी। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक तथा जैन मतानुयायी राजा शिवप्रसाद सितारा-ए-हिन्द ने इस धारणा को स्वरचित **'इतिहास तिमिरनाशक'** नामक पुस्तक में व्यक्त किया था और इसी सन्दर्भ को प्रमाण मानकर स्वामी दयानन्द ने जैन और बौद्ध मत की एकता की बात स्वग्रन्थ में लिखी थी। जब स्वामीजी की ओर से यह सफाई दी गई कि जैन-बौद्ध मत की एकता की बात उन्होंने राजा शिवप्रसाद की पुस्तक के आधार पर लिखी है तो जैन संगठनों ने राजा साहब से इसका स्पष्टीकरण मांगा। इसके उत्तर में राजा शिवप्रसाद ने 'किन्तु-परन्तु' करते हुए लिखा कि **'तिमिरनाशक'** में जो लिखा गया है वह उनका मत नहीं है किन्तु यह तो किसी अन्य का पक्ष है जिसे उन्होंने पूर्वपक्ष के रूप में लिखा था। राजा साहब की यह सफाई **'मित्र विलास'** के ४ अप्रैल १८८१ के अंक में छपी। सत्य तो यह है कि जैन और बौद्ध मत की एकता या पृथकता के प्रश्न से स्वामीजी का कोई लेना-देना नहीं था। उन्होंने तो केवल एक लेखक के मत को ही प्रस्तुत किया था। उनकी आलोचना तो जैन मत के दर्शन, आचार-शास्त्र तथा उसकी पुरागाथाओं को लेकर लिखी गई थी।

ठाकुरदास भाभड़ा द्वारा उठाये गये विवादों को निम्न ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है-

१. दयानन्द दिग्विजयार्क खण्ड १ मयूख ४ जैनमत मिथ्यात्व प्रदर्शनम्
२. पं. लेखराम रचित जीवनरचित में अध्याय ६ का दूसरा परिच्छेद
३. नवजागरण के पुरोधा-दयानन्द सरस्वती का प्रकरण चतुष्टय शीर्षक अध्याय

(च) स्वामी दयानन्द द्वारा संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना

स्वामी दयानन्द ने संस्कृत विद्या के पुनरुद्धार तथा आर्ष पठन-पाठन प्रणाली के प्रचार को दृष्टि में रखकर अनेक स्थानों पर संस्कृत पाठशालाएँ स्थापित की थीं। इनमें अध्ययन करने वाले छात्रों को भोजन, निवास तथा पुस्तकों की सारी सुविधाएं दी जाती थीं। स्वामीजी ने अपने सहपाठियों को इन पाठशालाओं में अध्यापन कार्य करने के लिए नियुक्त किया था। तत्कालीन पत्रों में इन पाठशालाओं की चर्चा छपती रहती थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा

सम्पादित **'कवि वचनसुधा'** ने २० जुलाई १८७४ के अंक में स्वामी दयानन्द द्वारा काशी में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करने का समाचार छापा। उसमें लिखा था कि जो पाठशाला पहले केदारघाट पर दिसम्बर १८७३ में आरम्भ हुई थी वह अब १६ जून १८७४ से मित्रपुर भैरवी मौहल्ले में आरम्भ होगी। पाठशाला के समयक्रम तथा पाठ्यक्रम का उल्लेख करने के पश्चात् यह सूचित किया गया था कि इस पाठशाला में गणेश श्रोत्रिय अध्यापक रहेंगे। विद्या और आचरण में श्रेष्ठ रहने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कृत करने की बात भी इस पत्र छपी थी। पटना के पत्र **'बिहारबन्धु'** ने अपने ८ जुलाई १८७४ के अंक में काशी की पाठशाला विषयक इसी सूचना को **'कवि वचनसुधा'** से लेकर उद्धृत किया। कलकत्ता की ब्राह्मपत्रिका **'तत्त्वबोधिनी पत्रिका'** ने स्वामी दयानन्द के बंगीय शिष्य हेमचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा प्रेषित समाचार के आधार पर अपने ज्येष्ठ १७९६ शकाब्द के अंक में काशी में स्थापित वैदिक पाठशाला का समाचार प्रकाशित किया। कानपुर में स्वामीजी ने हेमचन्द्र चक्रवर्ती महाशय से काशी में संस्कृत पाठशाला स्थापित करने की बात की थी। काशी के अतिरिक्त फर्रुखाबाद, कासगंज, मिर्जापुर तथा छलेसर में पाठशालाएं स्थापित की गई थीं। संस्कृत पाठशालाएं रथापित करने का सर्वप्रथम विचार स्वामी दयानन्द के मन में १८६९ में काशी शास्त्रार्थ की समाप्ति के बाद आया था। पाठशालाओं के लिए धन की व्यवस्था भी करनी थी। **'फ्रैण्ड ऑफ-इण्डिया'** ने १३ नवम्बर १८७३ के अंक में लिखा-सुप्रसिद्ध वैदिक सुधारक दयानन्द काशी में वैदिक पाठशाला स्थापित करने के निमित्त लखनऊ में धन एकत्र करने का यत्न कर रहे हैं। यहां उन्होंने अनेक वक्तृताएं दी हैं। इनमें से एक में उन्होंने भारतवर्ष की भूत, भविष्य और वर्तमान दशा का चित्रण किया था।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित ये पाठशालाएं अधिक काल तक नहीं चलीं। इसके कुछ कारण थे। आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन करने-कराने वाले विद्वानों का प्रायः अभाव था। उपयुक्त छात्र भी नहीं मिलते थे। स्वामीजी ने तो अपने कुछ सहपाठियों[२०] को ही अध्यापन में लगाया था किन्तु इन अध्यापकों का काम भी सन्तोषजनक नहीं रहा।

(छ) १२७ वर्ष पुराने विज्ञान-विलास (गुजराती मासिक) में स्वामी दयानन्द विषयक लेख

कई वर्ष पूर्व जब अहमदाबाद में मेरी भेंट प्रसिद्ध चिन्तक तथा विचारक नरेन्द्र भाई दवे से हुई थी तब उन्होंने मुझे **'विज्ञानविलास'** नामक एक गुजराती पत्र की १८७५ तथा १८८३ वर्षों की दो फाइलें भेंट स्वरूप दीं। १८७५ वर्ष के अप्रैल मास के इस पत्र में **'पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी'** शीर्षक एक लेख छपा है। लेखक का नाम अंकित नहीं है। **'विज्ञानविलास'** राजकोट की विद्यागुण प्रकाशक सभा के द्वारा प्रकाशित किया जाता था। आलोच्य लेख उसी मास (अप्रैल १८७५) में छपा था जिस मास में स्वामी दयानन्द ने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इस संक्षिप्त लेख में स्वामीजी के प्रारम्भिक जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी दी गई है। गुजरात के मोरबी संस्थान (राज्य) में जन्म लेने तथा सहस्र औदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा होने की बात इस तथ्य का संकेत करती है कि जब स्वामीजी बम्बई में कुछ काल तक रहकर अपनी मातृभूमि गुजरात के अहमदाबाद तथा राजकोट आदि नगरों में भ्रमण कर रहे थे, उस समय तक गुजरात-वासी उनके गुजराती होने तथा उनके प्रारम्भिक जीवन वृत्त को जान चुके थे। इस लेख में उनका जन्म आनुमानिक १८८६ वि. बताया है जो गलत है। वस्तुतः स्वामीजी का जन्म १८८१ वि. में हुआ था।

इस लेख में स्वामीजी की मूर्तिपूजा के प्रति अनास्था, विद्याध्ययन करने तथा वैराग्य धारण कर संन्यासी बनने आदि की घटनाएं संक्षेप में वर्णित हुई हैं। उनके कतिपय शास्त्रार्थों तथा केशवचन्द्र सेन आदि ब्राह्म नेताओं से उनकी भेंट का वर्णन करने के पश्चात् लेखक ने लिखा है-**"पण्डित दयानन्द का अभ्यास (अध्ययन) केवल संस्कृत का है तथापि उनके अधिकांश विचार आधुनिक सुधारकों को भी पीछे रखते हैं। इन्होंने बाइबिल का गहराई से अध्ययन किया है तथा कुरान का अनुवाद अरबी के अच्छे जानकार से सुना है। यूरोप के आधुनिक पदार्थ-विज्ञान से उनका अच्छा परिचय है। स्वामीजी के विचार प्रायशः समयानुकूल हैं।"** लेखक ने स्वामीजी की दीर्घायु की कामना कर इस लेख को समाप्त किया है।

स्वामीजी के निधन के पश्चात् **'विज्ञानविलास'** ने अपने नवम्बर १८८३ के अंक में उनको लक्ष्य कर श्रद्धाञ्जलि रूप में एक लेख छापा। अब तक स्वामीजी के जीवन विषयक पर्याप्त जानकारी देशवासियों को मिल चुकी थी। इस सामग्री के आधार पर लेख में स्वामीजी के जीवन और कार्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है। यह लेख इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्वामीजी को जोधपुर में विष देकर मरवा डालने के षड्यंत्र का उल्लेख मिलता है। प्रासंगिक पंक्ति इस प्रकार है-"स्वामी ना मरण माटे अेम कहेवाय छे के जोधपुर ना खटपटियाओ तेमने झेर देवरावी मार्या" (पृ. २८६) (स्वामीजी की मृत्यु के बारे में यह कहा जाता है कि जोधपुर के षड़यंत्रकारियों ने उन्हें विष दिलवा कर मार डाला) स्वामीजी के निधन को इस पत्र ने देश की महती क्षति माना है। लेखक की राय में "**दयानन्द सरस्वती जैसा अन्य मनुष्य होना दुर्लभ है। दयानन्द स्वामी गुर्जर भूमि (गुजरात) के भूषण रूप होने के कारण हम गुजरातियों के लिए अभिमान का कारण हैं।**"

(ज) इंग्लैण्ड के एक पत्र में स्वामी दयानन्द विषयक सन्दर्भ

लन्दन से प्रकाशित होने वाले पत्र **'एथिनियम'** ने अपने २३ अक्टूबर १८८० (संख्या २७६५ पृष्ठ ५३२-५३३) के अंक में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफेसर डा. मोनियर विलियम्स का एक लेख प्रकाशित किया था। इसमें डा. विलियम्स ने पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा अन्तरराष्ट्रीय प्राच्य-विद्या सम्मेलन के पंचम बर्लिन (जर्मनी) अधिवेशन में पठित **'संस्कृत : एक जीवित भाषा'** शीर्षक निबन्ध[२२] को उद्धृत किया तथा यह टिप्पणी दी-

"पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा ने एक ऐसे जगत्प्रसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा पाई है जो संस्कृत भाषा का अद्वितीय विद्वान् होने के साथ-साथ अद्वैतवाद और मूर्तिपूजा के खण्डन द्वारा आर्यावर्त के धार्मिक सम्प्रदायों में हलचल मचा चुका है। **देश की उन्नति और सुधार करने वाले इस व्यक्ति का नाम दयानन्द सरस्वती है जिसके भाषण की सुन्दरता व लेख की दृढ़ता का मैं स्वयं साक्षी हूँ, क्योंकि जब मैं बम्बई में था तो उस समय मैंने उक्त स्वामीजी से आर्यसमाज की एक सभा में धर्मसम्बन्धी उपदेश सुना था जिसका विषय 'आर्यों का जीवित धर्म' था।**" उन्होंने कुछ दिन पहले एक संस्कृत पत्र[२३] अपने शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा को लिखा था जो अभी बेलियल कॉलेज

ऑक्सफोर्ड में अध्ययनरत हैं।" इसके आगे प्रो. विलियम्स ने स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित उक्त पत्र को शब्दशः उद्धृत किया।

अंग्रेजी पत्र **'एथिनियम'** में छपे इस लेख को **'इण्डियन मिरर'** (कलकत्ता) **'नसीम'** आगरा (२० दिसम्बर १८८०) तथा **'आर्यसमाचार'** मेरठ (खण्ड २ संख्या २४) ने सम्पूर्ण रूप में उद्धृत किया था।

(झ) मुंशी इन्द्रमणि का मुकद्दमा और तत्सम्बन्धी प्रसंग

मुरादाबाद निवासी मुंशी इन्द्रमणि इस्लाम के मर्मज्ञ तथा अरबी-फारसी के विद्वान् थे। कट्टरपन्थी मौलवियों द्वारा हिन्दूधर्म के बारे में लिखी अनेक निन्दास्पद पुस्तकों का उन्होंने तुर्की-बतुर्की पुस्तक रूप में जवाब देकर धार्मिक जगत् में ख्याति पाई थी। चांदापुर के धर्म मेले में वे स्वामी दयानन्द के साथ (हिन्दू) वैदिक धर्म के प्रवक्ता के रूप में सम्मिलित हुए थे। जब मुरादाबाद में आर्यसमाज की स्थापना हुई तो मुंशीजी को उसका प्रधान चुना गया। मुसलमानों ने मुंशी इन्द्रमणि द्वारा इस्लाम की आलोचना में लिखी पुस्तकों का बुरा माना और **'जाम-ए-जमशेद'** नामक पत्र के १६ मई १८८० के अंक में एक समाचार छपाकर सरकार से प्रार्थना की कि उसे मुंशीजी के द्वारा लिखी पुस्तकों को आपत्तिजनक मानकर उनके खिलाफ उचित कार्यवाही करनी चाहिए। सरकार ने मुसलमानों की फरियाद पर तुरन्त कार्यवाही की और मुंशीजी पर फौज़दारी मुकद्दमा दायर कर दिया गया। **'आर्यदर्पण'** ने मई १८८० के अंक में लिखा कि इस अभियान के द्वारा मुंशीजी पर पांच सौ रुपया जुर्माना किया गया है तथा आपत्तिजनक समझी जाने वाली उनकी पुस्तकों को फड़वा डाला गया है।

जब स्वामी दयानन्द को इस वृत्तान्त का पता चला तो उन्होंने सर्वसाधारण आर्य (हिन्दू) जनों से अपील करते हुए कहा कि इस मुकद्दमे को हमें गम्भीरता से लेना चाहिए और इसे केवल इन्द्रमणि के खिलाफ अभियोग न मानकर एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न समझना चाहिए। उन्होंने मुकद्दमे की पैरवी करने और आवश्यकता होने पर हाईकोर्ट तक कानूनी लड़ाई लड़ने के लिए एक सहायता फण्ड की आवश्यकता बताई। एतदर्थ धनीमानी जनों से उपयुक्त सहायता भेजने का अनुरोध किया ताकि मुंशी इन्द्रमणि का बचाव किया जा सके। तुरन्त यह मामला सार्वजनिक चर्चा का विषय बन गया और

अनेक पत्रों ने इस पर स्वमत का प्रकाशन किया। इन पत्रों में उल्लेखनीय थे-**विद्याप्रकाशक-लाहौर, आर्यदर्पण-शाहजहांपुर, आर्यसमाचार-मेरठ, नसीम-आगरा, अवध अखबार, कोहेनूर-लाहौर, सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट, अखबार-ए-आम, आफताब-ए-पंजाब, अंजुमन-ए-पंजाब** तथा **प्रिंस ऑफ वेल्स गज़ट**।

यह मुकद्दमा काफी दिनों तक चला और मैजिस्ट्रेट के फैसले में जुर्माने की रकम पांच सौ से घटाकर मात्र १०० रुपये कर दी गई, तथापि इन्द्रमणि को निरपराध नहीं माना गया। **'आर्यदर्पण'** ने इस फैसले का विवरण जुलाई १८८० के अंक में छापा। अब मामला हाईकोर्ट में गया, और सौ रुपये के जुर्माने को बहाल रखा, किन्तु प्रान्त के लैफ्टिनेण्ट गवर्नर ने जुर्माने की यह राशि माफ कर दी। यह वृत्तान्त खुद मुंशीजी ने **'आर्यसमाचार'** मेरठ के खण्ड ३, संख्या ३ के अंक में प्रकाशित कराया।

मुंशी इन्द्रमणि के मुकद्दमे में कानूनी लड़ाई लड़ने के लिए स्वामीजी द्वारा जो सहायता की अपील की गई उसका अच्छा परिणाम निकला और पर्याप्त धन इस फण्ड में आया। तब यह निश्चय हुआ कि इस मुकद्दमे के निपट जाने के बाद जो धनराशि बचे उसकी एक स्थायी निधि बना दी जाए। किन्तु अब इन्द्रमणि को अर्थलोभ ने सताया। उन्होंने कहा कि अवशिष्ट धन पर उनका ही अधिकार है क्योंकि जनता ने उनको मुसलमानों द्वारा दायर किये गये अभियोग से बचाने के लिए ही यह धन दिया है। उनकी यह भी शिकायत थी कि हाईकोर्ट में अपील करने में जो व्यय होता वह उन्हें उक्त फण्ड से नहीं मिला। उन्होंने तो **'भारतमित्र'** में यहां तक छपा दिया कि जो लोग इस मुकद्दमे में उनकी सहायता करना चाहते हैं, वे सीधा उन्हें ही रुपया भेजें। उनका आशय यह था कि स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित सहायता निधि के संयोजक (लाला रामशरणदास, मेरठ) को लोग धन न भेजें। इस पर स्वामी दयानन्द के पक्ष को **'सत्यवक्ता'** के नाम से मुरादाबाद के **'तहज़ीब'** नामक पत्र के १२ मार्च १८८३ के अंक में विस्तारपूर्वक छपाया गया। इससे लोगों को विदित हो गया कि सार्वजनिक हित के लिए एकत्रित धन को मुंशी इन्द्रमणि खुद हड़पना चाहते हैं। मुंशी इन्द्रमगि के आरोपों से फैले इस भ्रम को दूर करने के लिए **'आर्य समाचार'** मेरठ के मार्च १८८३ क अंक में इस धन का पूरा हिसाब विस्तारपूर्वक छाप दिया गया। आर्यसमाज मेरठ ने यह हिसाब

प्रकाशनार्थ भेजा था क्योंकि सहायता रूप में प्राप्त धन इसी समाज में ही रखा गया था। प्रकाशित हिसाब से साफ हो गया कि आय और व्यय की राशियां क्रमशः १५१६ तथा ६६३ रुपये थी। अवशिष्ट ५५३ रुपयों को वेद प्रचारक उपदेशक मण्डली के व्यय हेतु रखा गया। इस वृत्तान्त को स्वामी दयानन्द ने 'भारतमित्र' में शाहपुरा से प्रकाशनार्थ भेजा जो २६ अप्रैल १८८३ के अंक में छपा।

इस प्रकरण का अन्त इस प्रकार हुआ कि मुंशी इन्द्रमणि आर्यसमाज के विरोधी बन गए और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विपरीत लिखने लगे। अन्ततः आर्यसमाज मुरादाबाद को उन्हें प्रधान पद से हटाना पड़ा। इस आशय का एक समाचार **'देशहितैषी'** के आषाढ़ १९४० वि. के अंक में छपा था। स्वामी दयानन्द ने भी मुंशी इन्द्रमणि को आर्यसमाज की सदस्यता से पृथक् करने के समाचार को **'भारत सुदशा प्रवर्त्तक'** तथा लाहौर के पत्रों में छपाने का आदेश आर्यसमाज मुरादाबाद को दे दिया।

पाद टिप्पणियां

१. थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना १७ नवम्बर १८७५ को हुई थी।

२. कर्नल ऑल्काट के विस्तृत परिचय के लिए इस लेखक की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' द्रष्टव्य है।

३. मैडम के विस्तृत परिचय के लिए पाद टिप्पणी २ में निर्दिष्ट पुस्तक देखें।

४. ये गुजराती यात्री मूलजी ठाकरसी थे जिन्होंने स्वामी दयानन्द का परिचय दोनों थियोसोफिस्टों को दिया था।

५. मेरठ में दिये गये कर्नल ऑल्काट के भाषण का मूल पाठ इस लेखक ने आर्य मर्यादा के २२ फरवरी, २९ मार्च तथा ५ अप्रैल १९७० के अंकों में छपाया था।

६. यह घोषणा २६ मार्च १८८२ को स्वामीजी ने बम्बई के फ्रामजी कावसजी हाल में सम्पन्न सभा में की थी।

७. Reply to the Extra Supplement to the Theosophist for July १८८२ रुड़की से १८८२ में प्रकाशित

८. मूल आत्मवृत्त हिन्दी में था। इसकी दो किस्तों की मूल हस्तलिखित प्रतियां इस लेखक को उस समय उपलब्ध हुईं जब वह परोपकारिणी सभा का संयुक्त मंत्री तथा इस संस्था की विद्वत् समिति का संयोजक था। इन दो किस्तों के ब्लाक बना कर उन्हें महर्षि दयानन्द की आत्मकथा (१९७५) में समाविष्ट किया गया था। इसके साथ आत्मकथा का अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया था।

९. वर्षों बाद इस ग्रन्थ को पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने प्राप्त किया तथा हिन्दी अनुवाद सहित रामलाल कपूर ट्रस्ट से २०१८ में प्रकाशित कराया। इस लेखक ने 'भागवतखण्डन' का सम्पादित संस्करण गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली से १९९९ ई. में प्रकाशित करवाया।

१०. 'शास्त्रार्थ तथा सतधर्म विचार' काशी शास्त्रार्थ का सर्वप्रथम (१८६९ में छपा) प्रकाशित विवरण था। इसे डा. ब्रजमोहन जावलिया ने महाराजा जयपुर के निजी ग्रन्थालय 'पोथीखाना' से प्राप्त किया। तत्पश्चात् पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने इसे सम्पादित कर १९८७ में प्रकाशित किया।

११. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा **'अद्वैतमत खण्डन'** को प्रकाशित करने का एक हेतु हमारी समझ में आता है। भारतेन्दु वल्लभाचार्य प्रवर्तित शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुयायी थे। यह सिद्धान्त शांकर अद्वैत का विरोधी दर्शन है। शांकर मत में जहां 'माया' को स्थान मिला है वहां वल्लभ के मत में ब्रह्म माया सम्पृक्त नहीं है। शांकर मत का विरोध करने वाली स्वामी दयानन्द की इस पुस्तक को भारतेन्दु द्वारा छपाने का यही कारण सम्भव है।

१२. आर.टी.एच. ग्रिफिथ गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज बनारस के प्राचार्य थे। इन्होंने वेदों का अंग्रेजी में पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

१३. मि. टॉनी कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कॉलेज के प्रिंसिपल थे।

१४-१५. ये दोनों विद्वान् ओरियण्टल कॉलेज लाहौर में संस्कृत के प्रवक्ता थे।

१६. राजा जयकृष्णदास का विशेष परिचय पा.टि. २ में निर्दिष्ट पुस्तक में देखें।

१७. यह ग्रन्थ लाइट प्रेस बनारस में गोपीनाथ पाठक द्वारा मुद्रित हुआ था।

१८. श्वेताम्बर (मूर्तिपूजक) जैनों का कहना था कि स्वामीजी ने जिन ग्रन्थों के आधार पर जैन मत की आलोचना की है वे दिगम्बर जैन मत के हैं और उन्हें मान्य नहीं हैं।

१९. स्वामीजी के वकीलों का नाम था मैसर्स पेन एण्ड गिलबर्ट। ये सालिसिटर थे।

२०. स्वामीजी ने अपने जिन सहपाठियों को अध्यापक के रूप में नियुक्त किया उनमें कुछ थे-पं. युगलकिशोर, पं. उदयप्रकाश आदि।
पं. गंगादत्त को वे फर्रूखाबाद की पाठशाला में लाना चाहते थे किन्तु निजी कारणों से वे नहीं आए।

२१. प्रो. मोनियर विलियम्स ने इस भेंट की चर्चा अपनी 'ब्राह्मनिज्म एण्ड हिन्दुइज्म' नामक पुस्तक में की है।

२२. 'Sanskrit-A Living Language' शीर्षक इस निबन्ध को लघु पुस्तिका के रूप में घासीराम प्रकाशन विभाग, आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त ने १९४२ में प्रकाशित किया था।

२३. पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा को लिखा गया स्वामी दयानन्द का यह पत्र मैंने स्वरचित पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा की जीवनी में उद्धृत किया है। यह पत्र श्लोकबद्ध है।

परिशिष्ट १

स्वामी दयानन्द को निम्न पत्रों ने श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं

पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) के पत्र

हिन्दी प्रदीप (मा.) इलाहाबाद

भारतबन्धु (सा.) अलीगढ़

शुभचिन्तक (मा.) शाहजहांपुर

बनारस गज़ट (सा.) बनारस (वाराणसी)

बदायूं समाचार बदायूं

हिन्दुस्तानी

नसीम हिन्द

बुन्देल केसरी

क्षत्रिय हितकारी, बनारस

अवध अखबार लखनऊ (दै.) उर्दू, ८ नवम्बर १८८३

मध्यप्रदेश के पत्र

बिलासपुर समाचार, बिलासपुर (वर्तमान छत्तीसगढ़)

बम्बई के पत्र (इसमें वर्तमान महाराष्ट्र तथा गुजरात सम्मिलित थे)

इण्डियर स्पीकर, सम्पादक-बहरामजी मलाबारी, १८ नवम्बर १८८३

बम्बई समाचार (दै.) २ नवम्बर १८८३

सुबोध पत्रिका (मा.)

यजदान परस्त

सत्यदीपिका

जामे जमशेद (दै.) २ नवम्बर १८८३

रास्त गुफ्तार (सत्य वक्ता) ४ नवम्बर १८८३

गुजरातमित्र सूरत ११ नवम्बर १८८३

वर्तमानसार सूरत

सूर्यप्रकाश सूरत

विज्ञानविलास (मा.) राजकोट दिसम्बर १८८३

केसरी पूना, बाल गंगाधर तिलक द्वारा सम्पादित

लोकहितवादी-गोपालराव हरि देशमुख का पत्र

पञ्जाब के पत्र

देशोपकारक (उर्दू) लाहौर

ट्रिब्यून (दै.) ३ नवम्बर १८८३, लाहौर

कोहेनूर (उर्दू), लाहौर

आफताब-ए-पंजाब (उर्दू) लाहौर

पंजाबटाइम्स रावलपिण्डी १० नवम्बर १८८३

विक्टोरिया पेपर-स्यालकोट

अंजुमन (उर्दू) लाहौर

ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका-लाहौर नवीनचन्द्र राय द्वारा सम्पादित

मद्रास प्रान्त के पत्र

हिन्दू आब्जर्वर मद्रास ८ नवम्बर १८८३

थिंकर मद्रास ११ नवम्बर १८८३

हिन्दू मद्रास

बिहार व बंगाल के पत्र

बंगाली कलकत्ता ३ नवम्बर १८८३ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा सम्पादित

इण्डियन एम्पायर कलकत्ता ४ नवम्बर १८८३

हिन्दू पैट्रियट कलकत्ता ८ नवम्बर १८८३

इण्डियन क्रानिकल कलकत्ता

बंगाल पब्लिक ओपिनियन कलकत्ता ८ नवम्बर १८८३

लिबरल कलकत्ता ११ नवम्बर १८८३

इण्डियन मैसेन्जर कलकत्ता ११ नवम्बर १८८३

एज्यूकेशन गज़ट कलकत्ता

इंगलिश क्रानिकल पटना, ५ नवम्बर १८८३

बंगवासी (बंगला) कलकत्ता

संजीवनी (बंगला) कलकत्ता

आर्यसामाजिक पत्र

१. आर्य दर्पण (मा.) शाहजहांपुर, मुंशी बख्तावरसिंह द्वारा सम्पादित

२. आर्य समाचार (उर्दू) मेरठ

३. भारत सुदशा प्रवर्त्तक (मा.) फर्रुखाबाद, अक्टूबर-नवम्बर १८८३

४. देशहितैषी (मा.) अजमेर

५. The Arya Magazine (मा.) लाहौर नवम्बर १८८३ सं. रतनचंद बेरी

६. The Regenerator of Aryavarta लाहौर (मा.) पं. गुरुदत्त द्वारा सम्पादित

७. पालमाल गज़ट लन्दन-प्रो. मैक्समूलर ने अपना श्रद्धाञ्जलिपरक लेख इस पत्र में प्रकाशित कराया था।

परिशिष्ट २

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ

१. हिन्दी समाचार-पत्रों का इतिहास-राधाकृष्णदास

२. समाचार-पत्रों का इतिहास-अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी २०१० वि.

३. हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएं-अखिल विनय १९४८

४. हिन्दी की पत्रकारिता-डा. कृष्णबिहारी मिश्र १९६८

५. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम-डा. वेदप्रताप वैदिक १९७६

६. The Rise and Growth of Hindi Journalism-Dr. R.R. Bhatnagar

७. आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार-डा. भवानीलाल भारतीय १९८१

८. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित-पं. लेखराम (हिन्दी) १९७४

९. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित (२ भाग)-पं. घासीराम (सम्पादक) १९५८

१०. दयानन्द चरित्र-देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, २००१ नया संस्करण

११. नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती-डा. भवानीलाल भारतीय १९८३

१२. महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी-डा. भवानीलाल भारतीय १९८६

पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें

१. आर्यदर्पण - शाहजहांपुर

२. देशहितैषी - अजमेर

३. भारत सुदशा प्रवर्त्तक - फर्रुखाबाद

४. विज्ञानविलास (गुजराती) - राजकोट

५. The Arya Magazine - Lahore

६. The Theosophist, - Bombay

परिशिष्ट ३

स्वामी दयानन्द विषयक संदर्भों को प्रकाशित करने वाली तथा इस ग्रन्थ में उल्लिखित अन्य पत्र-पत्रिकाओं का विवरण

क्र.	पत्र-पत्रिका का नाम	भाषा	प्रकाशन स्थान	विशेष विवरण
१.	अंजुमन-ए-पंजाव	उर्दू	लाहौर	
२.	अख़बार-ए-आम	उर्दू (दै.)	लाहौर	इसके प्रकाशक पं. मुकुन्दराम (कश्मीरी) थे।
३.	अमृतवाज़ार पत्रिका	बंगला/अंग्रेजी	कलकत्ता	१८६८ में मोतीलाल घोष ने जैस्सोर (बंगलादेश) जिले के अमृतवाज़ार कस्बे से यह बंगला साप्ताहिक निकाला। शिशिरकुमार घोष इनके सहयोगी थे। कालान्तर में यह कलकत्ता से अंग्रेजी दैनिक के रूप में निकलने लगा।
४.	अवध अख़बार	उर्दू	लखनऊ	मुंशी नवलकिशोर ने इसे १८६६ में प्रकाशित किया था।
५.	अहमदाबाद समाचार		अहमदावाद	
६.	आफताब-ए-पंजाब	उर्दू	लाहौर	
७.	आर्यदर्पण	हिन्दी,उर्दू(मा.)	शाहजहांपुर	यह आर्यसमाज का प्रथम हिन्दी मासिक था जिसे शाहजहांपुर के मुंशी बख्तावरसिंह ने जनवरी १८७८ में निकाला। यह द्विभाषी पत्र था। १६०६ तक निकलता रहा।
८.	आर्यधर्म प्रकाश	हिन्दी	बम्बई	बम्बई के वेदान्तवादी राजकृष्ण महाराज अपने पत्र हृदयचक्षु को आर्यधर्म प्रकाश नाम से प्रकाशित करने लगे। नाम परिवर्तन करने

				का परामर्श उन्हें स्वामी दयानन्द ने दिया था।
९.	आर्यप्रकाश			आर्यसमाज के उपनियमों में आर्यप्रकाश नामक पत्र निकालने की योजना रखी गई थी।
१०.	आर्य मित्र	हिन्दी (मा.)	बनारस	एच. के. भट्टाचार्य ने इसे १८७८ में निकाला।
११.	आर्य मित्र	मराठी	बम्बई	
१२.	आर्यवर्धिनी पत्रिका		बम्बई	
१३.	आर्य समाचार	उर्दू (सा.)	मेरठ	१८७८ में मेरठ से श्री कल्याण-राय के सम्पादन में निकलने वाला यह आर्यसमाज का प्रथम उर्दू पत्र था।
१४.	इंग्लिशमैन	अंग्रेजी (दै.)	कलकत्ता	पहले इस पत्र का नाम 'जान बुल' था।
१५.	इण्डियन डेली न्यूज	अंग्रेजी (दै.)	कलकत्ता	
१६.	इण्डियन पब्लिक ओपीनियन	अंग्रेजी	कलकत्ता	
१७.	इण्डियन मिरर	अंग्रेजी	कलकत्ता	नरेन्द्रलाल सेन ने केशवचन्द्र सेन की सहायता से यह पत्र निकाला। यह पत्र सेन महाशय के ब्राह्म विचारों का प्रवक्ता था।
१८.	इण्डियन स्पैक्टेटर	अंग्रेजी	कलकत्ता	
१९.	इन्दुप्रकाश	मराठी	बम्बई	१८६४ में विष्णु परशुराम पण्डित ने प्रकाशित किया।
२०.	उचित वक्ता	हिन्दी (सा.)	कलकत्ता	पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने इसे १८८० में निकाला।
२१.	उदन्त मार्तण्ड	हिन्दी (सा.)	कलकत्ता	३० मई १८२६ को युगलकिशोर शुक्ल ने इसे प्रकाशित करना आरम्भ किया। यह हिन्दी का प्रथम पत्र था।
२२.	एथिनियम	अंग्रेजी	लन्दन	लन्दन से प्रकाशित इस अंग्रेजी पत्र में प्रो. मोनियर विलियम्स ने

				स्वामी दयानन्द के संस्कृत ज्ञान की प्रशंसा की थी।
२३.	कवि वचन सुधा	हिन्दी (मा.)	बनारस	१८६८ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रकाशित किया
२४.	काशी पत्रिका		बनारस	
२५.	क्रिश्चियन इण्टेलिजेंसर	अंग्रेजी	कलकत्ता	टामस स्मिथ सिटी प्रेस से प्रकाशित होने वाले इस पत्र के नाम से अनुमान होता है कि यह पत्र ईसाई मिशनरियों का था। इसमें १८६६ के काशी शास्त्रार्थ का विस्तृत उल्लेख किया गया था।
२६.	खैरख्वाह	उर्दू	लाहौर	
२७.	गुजरात मित्र	गुजराती	सूरत	स्वामी दयानन्द के समय इसके सम्पादक कोई गेलाभाई नामक व्यक्ति थे।
२८.	जाम-ए-जमशेद	उर्दू	बम्बई	
२९.	टाइम्स ऑफ इण्डिया	अंग्रेजी (दै.)	बम्बई	यह वह अंग्रेजी दैनिक है जो एक शताब्दी से भी अधिक समय से निरन्तर प्रकाशित हो रहा है।
३०.	तत्त्वबोधिनी पत्रिका	बंगला	कलकत्ता	
३१.	तहज़ीब	उर्दू	मुरादाबाद	
३२.	थिंकर	अंग्रेजी	मद्रास	
३३.	दम्भहारक	मराठी	बम्बई	
३४.	दि आर्य मैगज़ीन	अंग्रेजी (मा.)	लाहौर	१ मार्च १८८२ से रतनचन्द बेरी के सम्पादन में निकलने वाला यह पत्र आर्यसमाज का प्रथम अंग्रेजी मासिक था। १८८५ तक निकलते रहने का अनुमान है।
३५.	दिग्दर्शन	बंगला	सीरामपुर, बंगाल	बैप्टिस्ट ईसाई मिशन का मासिक १८१७ में आरम्भ हुआ।
३६.	दि ट्रिब्यून	अंग्रेजी (दै.)	लाहौर	ब्राह्म मत के अनुयायी सरदार दयालसिंह मजीठिया ने १८७७ में लाहौर से निकाला।

३७. दि थियोसोफिस्ट	अंग्रेजी	बम्बई	थियोसोफिकल सोसाइटी का यह मुखपत्र बम्बई से १८८० में निकलने लगा। मैडम एच.पी. ब्लैवेट्स्की इसकी सम्पादक थीं।
३८. दि रिजेनेरेटर ऑफ आर्यावर्त	अंग्रेजी (मा.)	लाहौर	१८८२ में इस मासिक को लाहौर से पं. गुरुदत्त ने लाला हंसराज तथा लाला लाजपतराय के सहयोग से प्रकाशित किया। चार मास के बाद बन्द हो गया।
३९. दिल्ली इम्पीरियल	अंग्रेजी		इसके सम्पादक फ्रैड्रिक फैन्थम नामक कोई अंग्रेज थे।
४०. दिल्ली गज़ट	दिल्ली		
४१. देशहितैषी	हिन्दी (मा.)	अजमेर	आर्यसमाज अजमेर का यह मासिक मुखपत्र १८८२ में निकला। प्रारम्भ में पं. मुन्नालाल सम्पादक थे।
४२. धर्म तत्त्व	बंगला	कलकत्ता	
४३. नसीम	उर्दू	आगरा	
४४. निबन्धमाला	मराठी	पुणे	विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का पत्र
४५. नीतिप्रकाश	उर्दू	लुधियाना	मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी का पत्र
४६. नूर अफशां	उर्दू (सा.)	लुधियाना	यह ईसाई मिश्नरियों का पत्र था।
४७. नेशनल	अंग्रेजी	कलकत्ता	
४८. नीरंग-ए-मज़ामी	उर्दू		
४९. पंजाबी अख़बार	उर्दू	लाहौर	
५०. प्रत्नकम्र नन्दिनी	संस्कृत (मा.)	कलकत्ता	पं. सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित यह संस्कृत पत्रिका कलकत्ता से प्रकाशित होती थी। इसका अंग्रेजी नाम The Hindu Commentator था।

५१.	पताका	बंगला	कलकत्ता	इसके सम्पादक ज्ञानेन्द्रलाल राय एम. ए. बी. एल. थे।
५२.	पायोनियर	अंग्रेजी	इलाहाबाद	इस पत्र का प्रकाशन १८६५ में आरम्भ हुआ।
५३.	पालमाल गज़ट	अंग्रेजी	लन्दन	स्वामी दयानन्द के निधन के बाद प्रो. मैक्समूलर ने उन पर एक लेख इस पत्र में प्रकाशित करवाया था।
५४.	प्रिंस ऑफ वैल्स	गज़ट	अंग्रेजी	
५५.	प्लैटोनिक अमेरिका	अंग्रेजी	यू.एस.ए.	
५६.	फ्रैण्ड ऑफ इण्डिया	अंग्रेजी		
५७.	बंगदर्शन	बंगला	कलकत्ता	
५८.	बंगदूत	त्रिभाषी पत्र	कलकत्ता	राजा राममोहन राय ने १८२६ में इस पत्र को निकाला। इसमें बंगला, हिन्दी तथा फारसी में लेख छपते थे। नीलरतन हाल्दार इसके सम्पादक थे।
५९.	बंगाल गज़ट या कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर	अंग्रेजी	कलकत्ता	जेम्स आगस्टस हिकी द्वारा प्रकाशित भारत का पहला अख़बार १८७० में निकलना आरम्भ हुआ।
६०.	बड़ौदा वत्सल	बड़ौदा		
६१.	बम्बई गज़ट	बम्बई		
६२.	ब्रह्मैनिकल मैगज़ीन	अंग्रेजी	कलकत्ता	ईसाई प्रचारकों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये जाने वाले आक्षेपों का उत्तर देने के लिएं राजा राममोहन राय ने यह पत्र निकाला। यह अंग्रजी तथा बंगला का द्विभाषी पत्र था।
६३.	बॉम्बे गज़ट	अंग्रेजी	बम्बई	१७६१ से यह पत्र निकलना आरम्भ हुआ।
६४.	बिरादर-ए-हिन्द	उर्दू	लाहौर	यह पत्र पंजाब के ब्रह्मसमाज का मुखपत्र था।

६५.	बिहार दर्पण	हिन्दी	पटना	
६६.	बिहार वन्धु	हिन्दी (सा.)	कलकत्ता	इस पत्र के सम्पादक पं. केशवराम भट्ट थे जो पटना जिले के निवासी थे। यह पत्र १८७२ में निकला।
६७.	भारतबन्धु			
६८.	भारतमित्र	हिन्दी (दै.)	कलकत्ता	१८७८ में यह पत्र कलकत्ता से निकलना आरम्भ हुआ। इसके आदि सम्पादक पं. छोटूलाल मिश्र थे। प्रारम्भ में यह पाक्षिक था, पुनः साप्ताहिक तथा दैनिक भी निकला।
६९.	भारत सुदशा प्रवर्त्तक	हिन्दी (मा.)	फर्रूखावाद	
७०.	भारतीविलास	हिन्दी	आगरा	
७१.	मित्र विलास	हिन्दी (सा.)	लाहौर	सनातनधर्म की विचारधारा का वाहक यह पत्र पं. मुकुन्दराम शर्मा (कश्मीरी) ने १८७७ में निकाला।
७२.	मीरात-उल-अख़वार	फारसी	कलकत्ता	राजा राममोहन राय ने अपने विचारों के प्रचार के लिए यह पत्र निकाला।
७३.	मुम्वई समाचार	गुजराती	बम्बई	वम्बई से प्रकाशित होने वाला यह एक दैनिक पत्र था।
७४.	मोहन चन्द्रिका	हिन्दी	नाथद्वारा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' को पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने 'मोहन-चन्द्रिका' नाम से प्रकाशित किया।
७५.	राजपुताना गज़ट	उर्दू	अजमेर	मौलवी मोहम्मद मुरादअली इसे अजमेर से निकालते थे।
७६.	रोहेलखण्ड समाचार			
७७.	लखनऊ विटनेस	अंग्रेजी	लखनऊ	
७८.	वकील-ए-हिन्द	उर्दू	लाहौर	
७९.	विक्टोरिया पेपर	उर्दू	स्यालकोट	
८०.	विद्या प्रकाशक			

८१.	विज्ञान विलास	गुजराती	राजकोट	
८२.	वैष्णव पत्रिका	हिन्दी (मा.)	बनारस	पं. अम्बिकादत्त व्यास के सम्पादन में प्रकाशित हुई।
८३.	शमशीर बहादुर	उर्दू		
८४.	शोल-ए-तूर	उर्दू	कानपुर	इसी पत्र में स्वामी दयानन्द विषयक प्रथम समाचार छपा था।
८५.	स्टार अख़बार		बनारस	
८६.	स्टेट्समैन	अंग्रेजी (दै.)	कलकत्ता	१८७५ में कलकत्ता के जमींदार इन्द्रचन्द्रसिंह के आर्थिक सहयोग से निकला।
८७.	संवाद कौमुदी	बंगला	कलकत्ता	ताराचरण दत्त तथा भवानीचरण मुखर्जी के संयुक्त प्रयास से निकला पत्र १८२० में प्रारम्भ हुआ।
८८.	सत्यदीपिका	मराठी	बम्बई	१८६६ में निकला यह पत्र ईसाई मिश्नरियों का था।
८९.	समाचार दर्पण	बंगला	कलकत्ता	ईसाई प्रचारकों ने निकाला।
९०.	सहीफ-ए-आलम	उर्दू	मेरठ	इसमें स्वामी दयानन्द के काशी में किये गये शास्त्रार्थ का विवरण छपा था।
९१.	सारसुधानिधि	हिन्दी (सा.)	कलकत्ता	पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने इस पत्र को १८७९ में प्रकाशित किया।
९२.	सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट	अंग्रेजी	लाहौर	१८७८ में अंग्रेजों की नीति को प्रधानता देने वाला यह पत्र लाहौर से निकला। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक रडयार्ड किपलिंग इसके सहायक सम्पादक थे।
९३.	सुबोध पत्रिका	मराठी	बम्बई	यह बम्बई की प्रार्थनासमाज का पत्र था।
९४.	सोमप्रकाश	बंगला (सा.)	कलकत्ता	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा द्वारकानाथ विद्याभूषण ने प्रति सोमवार को इस पत्र को निकालना आरम्भ किया।

९५. हृदयचक्षु	मराठी	बम्बई	यह पत्र राजकृष्ण महाराज निकालते थे।
९६. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका	हिन्दी (मा.)	बनारस	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८७३ में प्रकाशित अपने पत्र हरिश्चन्द्र मैगज़ीन को १८७४ में उक्त नाम से निकालना आरम्भ किया। इसके सम्पादक मण्डल में स्वामी दयानन्द का नाम छपता था।
९७. हितेच्छु	मराठी	बम्बई	सम्भवतः इसका पूरा नाम स्वदेश-हितेच्छु था।
९८. हिन्दी प्रदीप	हिन्दी (मा.)	इलाहाबाद	इस हिन्दी मासिक को पं. बालकृष्ण भट्ट ने १८७७ में प्रकाशित किया।
९९. हिन्दू पैट्रियट	अंग्रेजी	कलकत्ता	१८५५ में हरिश्चन्द्र मुखर्जी नामक एक सज्जन ने यह पत्र निकालना आरम्भ किया।
१००. हिन्दू बांधव	हिन्दी, उर्दू	लाहौर	१८७६ में इस पत्र को नवीनचन्द्र राय ने निकाला। आरम्भ में इसके सम्पादक शिवनारायण अग्निहोत्री (देवसमाज के संस्थापक) थे।
१०१. हिन्दू हितैषी	बंगला	ढाका	
१०२. ज्ञान प्रकाश	मराठी	पूना	१८४९ में प्रकाशित हुआ।
१०३. ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका	हिन्दी-उर्दू(मा.)	लाहौर	यह पत्रिका द्विभाषी (हिन्दी व उर्दू) थी तथा इसे ब्राह्म नेता नवीनचन्द्र राय ने १८६६ में निकाला था।

डा. भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित/सम्पादित/अनूदित स्वामी दयानन्द विषयक साहित्य

(अ) मौलिक जीवन चरित

१. नवजागरण के पुरोधा-दयानन्द सरस्वती १९८३

२. आर्यसमाज के संस्थापक-स्वामी दयानन्द २००२

(आ) सम्पादित जीवन चरित

१. दयानन्द दिग्विजयार्क (गोपालराव हरि पुणतांकर) १९७४, १९८३

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र (पं. लेखराम) १९८८, २००१

३. श्री श्री दयानन्द चरित (सत्यबन्धुदास) १९८६

४. युग प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द (लाला लाजपतराय) १९९८

५. ऋषि दयानन्द के चार लघुजीवनचरित-
(नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, जगन्नाथ भारतीय, मांगीलाल गुप्त तथा दीनानाथ गांगुली लिखित) १९९९

६. दयानन्द चरित (देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) २०००

७. Dayanand Saraswati By S.N. Kulyar

(इ) स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों की टीका, व्याख्या आदि

१. ज्ञानदर्शन (सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास की व्याख्या) १९७७

२. हिन्दू धर्म की निर्बलता १९८२

३. भारतवर्षीय मत-मतान्तर समीक्षा १९९३

४. विश्वधर्म कोश : सत्यार्थ प्रकाश १६७८, २००२

५. महर्षि दयानन्द और वेद १६६६

(ई) स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों का सम्पादन

१. काशी शास्त्रार्थ १६६६

२. ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के तीसरे सूक्त के चतुर्थ मंत्र तक का भाष्य १६७० (२०२७ वि.)

३. दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह १६७०, १६८२

४. चतुर्वेद विषय सूची १६७१

५. दयानन्द उवाच १६७४, १६८३, २०५२ वि.

६. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा १६७५, १६८३, १६६६

७. पूल प्रवचन-उपदेश मंजरी १६७६, १६८५

८. दयानन्द सूक्ति मुक्तावली १६६१

६. भागवत खण्डनम् १६६६

(उ) स्वामी दयानन्द के प्रवास विवरण

१. महर्षि दयानन्द के ऐतिहासिक संस्मरण (सम्पादित) १६७५

२. ऋषि दयानन्द का साढे चार मास का जोधपुर प्रवास १६६०

३. ऋषि दयानन्द का उदयपुर (मेवाड़) प्रवास १६६५
नीदरलैण्ड संस्करण १६६६

४. काशी में महर्षि दयानन्द १६६८

५. महर्षि दयानन्द का वडोदरा (बड़ौदा प्रवास) २०००

६. ऋषि दयानन्द का दिल्ली प्रवास २००१

७. स्वामी दयानन्द सरस्वती का मुम्बई प्रवास २००१

८. महर्षि दयानन्द का कर्णवास प्रवास २००१
९. महर्षि दयानन्द का जनपद बुलन्दशहर में प्रवास २००१
१०. महर्षि दयानन्द का पुणे (पूना) प्रवास २००२

(ऊ) स्वामी दयानन्द विषयक तुलनात्मक अध्ययन

१. ऋषि दयानन्द और अन्य भारतीय धर्माचार्य १९४६, २००२
२. महर्षि दयानन्द और राजा राममोहन राय १९५७
३. महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द के मूर्तिपूजा विषयक विचार १९७१
४. महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द १९७१
(वेद विषयक तुलनात्मक अध्ययन)
५. महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द (संक्षिप्त) १९७२
६. महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द १९७५, १९८६, १९९५
उड़िया अनुवाद १९९४
७. महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी १९८६

(ए) स्वामी दयानन्द : विवेचनात्मक ग्रन्थ

१. महर्षि दयानन्द का राष्ट्रवाद १९५६
२. महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन १९६८
३. ऋषि दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्त (सम्पादित) १९८२
४. दयानन्द साहित्य सर्वस्व (Bibliography) १९८३
५. महर्षि दयानन्द : निर्वाण शताब्दी व्याख्यान माला, १९८६
७. स्वामी दयानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं विचार, १९९७
८. स्वामी दयानन्द का स्वराज्य चिन्तन, २०००

९. स्वामी दयानन्द सरस्वती : विचार विश्लेषण २००१ (गुजराती)

१०. स्वामी दयानन्द के पत्र-व्यवहार का विश्लेषणात्मक अध्ययन २००२

११. स्वामी दयानन्द सरस्वती : सम-सामयिक पत्रों में २००३

(ऐ) स्वामी दयानन्द विषयक सम्पादित ग्रन्थ

१. महर्षि श्रद्धाञ्जलि (पत्र-पत्रिकाओं द्वारा) १९६८

२. महर्षि दयानन्द प्रशस्ति (संस्कृत कविताएँ), १९६९

३. महर्षि दयानन्द प्रशस्ति (नारायणप्रसाद बेताब रचित मुसद्दस) १९७४

४. महर्षि दयानन्द प्रशस्ति काव्यम् १९८६

५. मैंने ऋषि दयानन्द को देखा १९९३

६. सूरज बुझाने का पाप (केशूभाई देसाई के उपन्यास का अनुवाद) १९९३

७. ऋषि दयानन्द कीर्तिगान (बेताब के मुसद्दस) १९९६

८. महर्षि दयानन्द - हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में १९९६

९. स्वामी दयानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व, विचार और मूल्यांकन २०००

१०. आदर्श सुधारक दयानन्द २००१

११. स्वामी दयानन्द सरस्वती : पश्चिम की दृष्टि में २००१

लेखक परिचय



भारतीय नवजागरण में दयानन्द सरस्वती व आर्यसमाज की भूमिका के अधिकृत व्याख्याता डॉ. भवानीलाल भारतीय अपने विषय के तलस्पर्शी विद्वान हैं। 1928 ई. में उनका जन्म राजस्थान के नागौर जनपद के परबतसर ग्राम में एक मध्यवित्त परिवार में हुआ। उनकी उच्च शिक्षा जोधपुर में हुई। हिन्दी और संस्कृत में एम.ए. करने के पश्चात् उन्होंने 'संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन' विषय लेकर राजस्थान विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की।

राजस्थान की कॉलेज शिक्षा सेवा में दो दशकों तक रहने के पश्चात् वे पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द वैदिक शोधपीठ के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष रहे। अपने युवा काल से ही वे आर्यसमाज की साहित्यिक और लेखन सम्बन्धी प्रवृत्तियों से जुड़े रहे। वेद, उपनिषद्, दर्शन, धर्म, संस्कृति और विशेषतः दयानन्द सरस्वती के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लिखे गये उनके शोधपरक ग्रन्थों की सुधी समाज में सर्वत्र प्रशंसा हुई है। इस बीच उनके लगभग 125 ग्रन्थ छप चुके हैं जिनमें मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त सम्पादित तथा अनूदित कृतियाँ भी पर्याप्त हैं। उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में दयानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व और विचार, नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती, दयानन्द और विवेकानन्द : तुलनात्मक अध्ययन, श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (11 खण्ड), हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन, जर्मनी के संस्कृत विद्वान् आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

अनेक सम्मानों और पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. भारतीय आर्यसमाज के सर्वोच्च साहित्य सम्मान मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार से 1992 में सम्मानित किये जा चुके हैं। उन्होंने आर्यसमाज के वैचारिक पक्ष को उभारने का सतर्क प्रयास किया है। स्वामी दयानन्द एवं भारतीय नवजागरण विषयक साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है तथा उनके निजी पुस्तकालय में स्वामी दयानन्द द्वारा लिखे गये तथा तत्सम्बद्ध साहित्य सर्वाधिक संख्या में है। इस दृष्टि से इसे विश्व का अद्वितीय पुस्तक-संग्रह माना गया है। अनेक स्वदेशी तथा विदेशी शोध विद्वान् इस पुस्तकालय से सहायता लेते रहे हैं। वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचारार्थ वे भारत के अतिरिक्त हालैण्ड, बेलजियम, जर्मनी, नेपाल तथा मॉरिशस का प्रवास कर चुके हैं।

सम्पर्क सूत्र : 8/423, नन्दनवन, जोधपुर-342008 फोन : 0291-2755883